इस्लामी तालीमात

मौलाना मुहम्मद सुलैमान क़ासमी
अनुवादक
मुहम्मद सलीम सिद्दीक़ी

विषय-सूची

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, रहम करनेवाला है।)

दो शब्द

यह किताब मेरे उन लेखों का संग्रह है जो मैंने सन् 1965 ई० से 1967 ई० तक एक मशहूर हिन्दी मासिक 'कान्ति' के लिए लिखे थे। एक ग़ैर मुस्लिम पाठक ने सम्पादक को लिखा था कि "इस्लामी तालीमात भी थोड़ी-थोड़ी कान्ति में आती रहे तो अच्छा है।" सम्पादक महोदय ने यह ज़िम्मेदारी मुझे सौंप दी। अल्लाह की तौफ़ीक़ और उसके फ़ज़्ल से यह सिलसिला दो साल तक चलता रहा। इस किताब में इस्लामी अक़ीदे और इबादतों का बयान है। अब इसे 'इस्लामी तालीमात' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। इसका दूसरा भाग इनशाअल्लाह अख़लाक़, आदात, हुक़ूक़ और आदाब के बारे में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की तालीमात पर आधारित होगा और उसका नाम 'तालीमाते नबवी' होगा।

अल्लाह से दुआ है कि इस किताब से लोग ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाएँ। अगर इसके ज़रिये एक शख़्स को भी हिदायत मिल गई, तो अल्लाह ने चाहा तो मेरा बेड़ा पार है।

इस किताब को अपने मरहूम माँ-बाप के नाम मनसूब करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस्लामी तालीम दिलाई। ऐ मेरे पालनहार ! उन दोनों ने जिस तरह बचपन में मेरा पालन-पोषण किया, तू भी उसी तरह उनपर रहम कर।

22 मई, 1967 — मुहम्मद सुलैमान क़ासमी
रामपुर

अल्लाह पर ईमान

अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने इनसानों की रहनुमाई, ज़िन्दगी के तमाम मैदानों में की है। आपकी तालीम अमली ज़िन्दगी के सभी पहलुओं पर हावी हैं। निजी ज़िन्दगी का कोई हिस्सा, सामूहिक और सामाजिक जीवन का कोई मैदान ऐसा नहीं है जिसमें आप (सल्ल०) ने इनसानों की रहनुमाई न की हो और उनके सुधार के लिए भरपूर कोशिश न की हो।

केवल यही नहीं कि आपकी तालीम अमली ज़िन्दगी के सभी पहलुओं पर हावी है, बल्कि फ़िक्र और अक़ीदे के मैदान में भी आप (सल्ल०) ने लोगों की रहनुमाई की है, उन्हें अँधेरों में भटकने के लिए नहीं छोड़ा है। ग़लत फ़िक्री और बुरे अक़ीदों में फंसकर नाकामी और नामुरादी के मैदानों में भटकने और तबाह व बरबाद होने के लिए यूँ ही रहने नहीं दिया है। बल्कि आपने सही विचार और पक्के अक़ीदे के ऐसे रौशन मीनार क़ायम किए हैं कि मानव-जाति का हर व्यक्ति, इनसानी आबादी का हर क्षेत्र, ज़मीन पर बसनेवाली हर क़ौम व नस्ल और हर नई तहज़ीब व तमद्दुन (संस्कृति) का इनसान अपनी फ़िक्री और अमली ज़िन्दगी के सभी मैदानों को रौशन कर सकता है।

इनसान का अमल (कर्म) उसके फ़िक्र और विचार के तहत होता है, उसका किरदार उसके अक़ीदे का अक्स होता है। अमल एक फ़रमाँबरदार ग़ुलाम है, और फ़िक्र व नज़र एक ज़हीन और मेहनती हाकिम। इनसान की फ़िक्री क़ुव्वत पहले तो चीज़ों की हक़ीक़तों के बारे में सोच-विचार करती है, फिर उनके अच्छे या बुरे होने या फ़ायदामन्द या नुक़सानदेह होने का फ़ैसला करती है, उसके बाद वह अमल की क़ुव्वत को हुक्म देती है और अमल की क़ुव्वत जो हर वक़्त और हर पल एक फरमाँबरदार ग़ुलाम की तरह मालिक के हुक्म का इन्तिज़ार करती रहती है, तुरन्त उसका पालन करती है।

अतः दुनिया में इनसान और उसकी ज़िन्दगी का बनना, बिगड़ना और आख़िरत में कामयाबी या नाकामी का दारोमदार अमल और किरदार के साथ-साथ हक़ीक़त में फ़िक्र और अक़ीदे ही पर निर्भर करता है, क्योंकि अच्छे अमल का सबब अच्छा अक़ीदा और बुरे अमल का सबब बुरी फ़िक्र और ग़लत विचार होते हैं। इनसानी अमल और किरदार की अच्छाई या बुराई उसकी फ़िक्र और अक़ीदे ही पर निर्भर करती है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अमल और किरदार के सभी पहलुओं पर जितना ज़ोर दिया है उतना ज़ोर किसी और के यहाँ नहीं मिलता, फिर भी आप (सल्ल०) की तालीम में फ़िक्र और अक़ीदे को बहुत ज़्यादा बल्कि बुनियादी अहमियत हासिल है।

सबसे पहली और बुनियादी तालीम

अक़ीदे में सबसे पहले अल्लाह पर ईमान लाना है। अल्लाह पर ईमान लाने का मतलब यह है कि—

(अ) उसके वुजूद को इस तरह माना जाए कि वह आप से आप हमेशा से है और हमेशा रहेगा।

(ब) उसकी सिफ़तों (गुणों) को माना जाए कि वह अपनी तमाम सिफ़तों के साथ सदा से है और सदा रहेगा।

(स) उसके हक़ और अधिकारों को माना जाए और उनको सिर्फ़ उसी के लिए ख़ास समझा जाए।

अल्लाह के वुजूद को मानने का मतलब यह है कि संसार में जो कुछ मौजूद है, मौजूद था और मौजूद होगा उसका एक पैदा करनेवाला, मालिक और हाकिम है जो हमेशा से है और हमेशा रहेगा। उसमें पूर्णता, सारी ख़ूबियाँ, गुण और हर तरह की ताक़त और क़ुदरत मौजूद है। उसमें कोई ऐब, कमी, कोताही, ख़राबी और बुराई बिलकुल नहीं है। वह अकेला और यकता है, उसका कोई साझी नहीं। उस जैसा कोई नहीं। उसके बराबर का कोई नहीं। उसकी ज़ात, उसके गुणों, उसके हुक़ूक़ और अधिकारों में कोई किसी भी रूप में शरीक नहीं। पूरी कायनात और तमाम मख़लूक़ात का वह अकेला पैदा करनेवाला, मालिक और हाकिम है। वह दिखाई नहीं देता लेकिन मौजूद है, बिलकुल उसी तरह जिस तरह हर जानदार में जान मौजूद है लेकिन नज़र नहीं आती, हर ख़ुशबूदार चीज़ में ख़ुशबू मौजूद है लेकिन नज़र नहीं आती। इसी तरह कायनात का पैदा करनेवाला 'अल्लाह' मौजूद है। पूरी कायनात उसके वुजूद की गवाही दे रही है।

अल्लाह की सिफ़तों (गुणों) को मानने का मतलब यह है कि अल्लाह की जो ख़ूबियाँ और सिफ़तें क़ुरआन और सुन्नत से संक्षिप्त रूप में बिना किसी तफ़सील के साबित हैं उनको उसी तरह माना जाए और जो सिफ़तें निश्चित रूप से तफ़सील और वज़ाहत के साथ साबित हैं, उनको उसी तरह माना जाए। उसमें कोई ऐसी सिफ़त न जोड़ी जाए जो उसकी शान के ख़िलाफ़ हो और जो क़ुरआन और सुन्नत से साबित न हो। जो सिफ़त, जो ख़ूबी और जो क़ुदरत जिस तरह और जिस रूप में क़ुरआन और सुन्नत से साबित हो उसको उसी तरह और उसी हैसियत में ज्यों का त्यों माना जाए, अपनी ओर से उसमें कोई कमी-बेशी न की जाए।

अल्लाह के हुक़ूक़ और अधिकारों पर ईमान का मतलब भी यही है कि अल्लाह के जो और जितने हुक़ूक़ और अधिकार क़ुरआन और सुन्नत से साबित हों उनको

ज्यों का त्यों माना जाए।

अल्लाह के वुजूद, सिफ़तों, हुकूक़ और अधिकारों के सिलसिले में धरती और आकाश में चारों ओर बिख़री हुई निशानियों, इनसानी शरीर में मौजूद अल्लाह की निशानियों और क़ुरआनी आयतों का हमें अध्ययन करना चाहिए।

तारीफ़ और शुक्र सिर्फ़ अल्लाह के लिए है

> "सारी तारीफ़ें और शुक्र तमाम जहानों के रब अल्लाह ही के लिए हैं जो बड़ा मेहरबान और रहम करनेवाला है, जो बदले के दिन का मालिक है।" (क़ुरआन, 1:1-3)

अल्लाह का साझी मत ठहराओ

> "किसी को अल्लाह का साझी मत ठहराओ (जबकि) तुम जानते भी हो।" (क़ुरआन, 2:22)

सारी कायनात का मालिक अल्लाह है

> "और पूरब और पश्चिम अल्लाह ही के हैं।" (क़ुरआन, 2:115)

माबूद (पूज्य) सिर्फ़ अल्लाह है

> "और तुम्हारा माबूद (पूज्य) एक ही माबूद है, नहीं है कोई माबूद मगर वही, जो बड़ा मेहरबान और बहुत रहम करनेवाला है।" (क़ुरआन, 2:163)

अल्लाह ज़िन्दा है और पूरी कायनात को थामे हुए है

> "अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, वह ज़िन्दा है, (कायनात) का थामनेवाला।" (क़ुरआन, 3:2)

यानी वह हमेशा से है और हमेशा रहेगा, वह ख़ुद क़ायम है और पूरी कायनात को क़ायम रखे हुए है।

फ़रिश्ते और इल्मवाले गवाह हैं कि माबूद (पूज्य) सिर्फ़ अल्लाह है

> "अल्लाह ने गवाही दी कि उसके सिवा कोई माबूद नहीं और फ़रिश्तों ने गवाही दी और इल्मवालों ने भी इनसाफ़ पर रहते हुए गवाही दी।" (क़ुरआन, 3:18)

अल्लाह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है

> "अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं। वह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।" (क़ुरआन, 3:18)

अल्लाह के सिवा कोई इनसान या ग़ैर इनसान बन्दगी के लायक़ नहीं

"(ऐ नबी!) कह दो, ऐ किताबवालो! आओ एक ऐसी बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे बीच बराबर है, वह यह कि हम अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी न करें, और उसके साथ किसी भी चीज़ को शरीक न करें और आपस में एक-दूसरे को अल्लाह के सिवा 'रब' न बनाएँ।" (क़ुरआन, 3:64)

जिन्हें नफ़ा-नुक़सान का अधिकार न हो उनकी बन्दगी किस तरह सही ह सकती है!

"(ऐ नबी!) कह दो क्या तुम अल्लाह के सिवा उसकी इबादत करते हो जो तुम्हें नफ़ा या नुक़सान तक पहुँचाने का इख़तियार नहीं रखते।" (क़ुरआन, 5:76)

नफ़ा-नुक़सान का मालिक सिर्फ़ अल्लाह है

"और (ऐ इनसान) अगर अल्लाह तुझे नुक़सान पहुँचाए, तो उससे बचानेवाला उसके सिवा कोई नहीं है, और अगर वह तुझे नफ़ा पहुँचाना चाहे तो वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।" (क़ुरआन, 6:17)

यदि अल्लाह तुम्हारी सारी ताक़तें छीन ले तो!

"(ऐ नबी) कह दो क्या तुमने सोचा कि अगर अल्लाह तुम्हारी सुनने और देखने की ताक़त छीन ले और तुम्हारे दिलों पर मुहर लगा दे, तो अल्लाह के सिवा कौन ख़ुदा है जो तुम्हें ये ताक़तें वापस दे सकेगा? (अर्थात कोई दूसरा नहीं है।)" (क़ुरआन, 6:46)

अल्लाह सबका पैदा करनेवाला और पालनहार है, इसलिए बन्दगी का हक़दा भी वही है

"यह अल्लाह है तुम्हारा पालनहार, उसके सिवा कोई माबूद नहीं, वह हर चीज़ का पैदा करनेवाला है, अतः उसी की इबादत और बन्दगी करो।" (क़ुरआन, 6:102)

अल्लाह ही ने इनसान को सारी मख़लूक़ से ऊँचा बनाया, अतः अल्ला ही इबादत का हक़दार है

"(नबी ने) कहा, क्या अल्लाह के सिवा कोई और माबूद तुम्हारे लिए तलाश करूँ? हालाँकि उसी ने तुमको सारे जहानों में सबसे ऊँचा बनाया।" (क़ुरआन, 7:140)

ज़िन्दगी और मौत अल्लाह ही के हाथ में है, अत: वही इबादत के लायक़ है

"अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, (क्योंकि) वही ज़िन्दगी देता है और मौत भी देता है।" (क़ुरआन, 7:158)

सच्चे माबूद अल्लाह ने सिर्फ़ अपनी बन्दगी का हुक्म दिया है

"और उनको सिर्फ़ एक माबूद की बन्दगी का हुक्म दिया गया, (क्योंकि) उसके सिवा कोई दूसरा माबूद है ही नहीं।" (क़ुरआन, 9:31)

इनसान का ख़ुदा और हाकिम वही हो सकता है जो कायनात को पैदा करने और उसका इंतिज़ाम चलाने की क़ुदरत रखता हो

"बेशक तुम्हारा पालनहार और मालिक अल्लाह ही है, जिसने आसमानों और ज़मीन को छ: दिनों में बनाया फिर सिंहासन पर विराजमान हुआ। (अर्थात् हुकूमत का इंतिज़ाम सँभाला)।" (क़ुरआन, 10:3)

कायनात का इंतिज़ाम अल्लाह के हाथ में है, उसकी इजाज़त के बिना उसके यहाँ कोई सिफ़ारिश नहीं चलेगी

"वह कायनात के मामलों की तद्बीर करता है, उसकी इजाज़त के बग़ैर उसके यहाँ कोई सिफ़ारिश करनेवाला नहीं है।" (क़ुरआन, 10:3)

जो रोज़ी देता है और कायनात का इंतिज़ाम चला रहा है वही अल्लाह है

"कहो, तुम्हें आसमानों और ज़मीन में रोज़ी कौन देता है, या कान और आँखों पर किसका अधिकार है, कौन है जो बेजान में से जानदार को निकालता है और जानदार में से बेजान को निकालता है? कौन है जो यह सारा इंतिज़ाम चला रहा है ? तो वे कहेंगे, अल्लाह, तो कहो, क्या तुम डरते नहीं (उसकी नाफ़रमानी से) ? वही अल्लाह है तुम्हारा हक़ीक़ी पालनहार।" (क़ुरआन, 10:31-32)

सारे नबियों का पैग़ाम एक ही है कि अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं

"और हमने नूह (अलै०) को उसकी क़ौम की ओर भेजा (तो नूह ने क़ौम से कहा,) मैं तुम्हें साफ़-साफ़ ख़बरदार करनेवाला हूँ। तुम अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करो।" (क़ुरआन, 11:25-26)

"और हमने 'आद' क़ौम की ओर उनके भाई 'हूद' को भेजा। उसने कहा : ऐ मेरी क़ौम के लोगो! अल्लाह की बन्दगी करो, (क्योंकि) उसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं है।" (क़ुरआन, 11:50)

"और 'समूद' क़ौम की ओर उनके भाई 'सालेह' को भेजा। सालेह ने कहा, ऐ मेरी क़ौम! अल्लाह की इबादत करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं है।" (क़ुरआन, 11:61)

"और मदयन की ओर उनके भाई शुऐब को भेजा। उसने कहा, ऐ मेरी क़ौम अल्लाह की इबादत करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं है।" (क़ुरआन,11:84)

"(हज़रत यूसुफ़ ने कहा,) ऐ मेरे जेल के साथियो! क्या बहुत से अलग-अलग ख़ुदा बेहतर हैं या एक ज़बरदस्त अकेला अल्लाह?" (क़ुरआन, 12:39)

"और यक़ीनन हमने हर उम्मत (समुदाय) में एक रसूल (यह पैग़ाम देकर) भेजा कि अल्लाह की बन्दगी करो और ताग़ूत (झूठे ख़ुदाओं) से बचो।" (क़ुरआन, 16:36)

"और हमने तुमसे पहले जो 'रसूल' भी भेजा उसे हमने यही हुक्म देकर भेजा कि मेरे सिवा कोई 'इलाह' (पूज्य) नहीं, तो तुम मेरी ही इबादत करो।" (क़ुरआन, 21:25)

कायनात का पैदा करनेवाला ही इताअत और बन्दगी के लायक़ है

"क्या वह जो पैदा करता है उसकी तरह हो सकता है जो कुछ नहीं पैदा कर सकता, क्या तुम सोच-विचार नहीं करते।" (क़ुरआन, 16:17)

माबूद वही हो सकता है जिसका इल्म हर चीज़ पर हावी हो

"तुम्हारा ख़ुदा सिर्फ़ अल्लाह है जिसके सिवा कोई माबूद नहीं, उसका इल्म हर चीज़ पर फैला हुआ है।" (क़ुरआन, 20:98)

अगर एक अल्लाह के सिवा कोई और ख़ुदा होता तो कायनात का निज़ाम बिगड़ जाता

"यदि ज़मीन और आसमानों में अल्लाह के सिवा और भी माबूद होते तो दोनों टूट-फूट जाते।" (क़ुरआन, 21:22)

कायनात में रद्दोबदल का अधिकार सिर्फ़ अल्लाह को है

"अल्लाह के सिवा कौन माबूद है जो तुम्हारे लिए रात लाता है जिसमें तुम सुकून हासिल करते हो। क्या तुम समझ-बूझ से काम नहीं लेते?" (क़ुरआन, 28:72)

"और अगर तुम उनसे पूछो कि आसमानों और ज़मीन को किसने पैदा किया? और सूरज और चाँद को काम में किसने लगाया? तो वे ज़रूर कहेंगे कि अल्लाह ने, तो फिर वे कहाँ भटक रहे हैं?"

(क़ुरआन, 29:61)

"और अगर तुम उनसे पूछो कि आसमान से पानी किसने उतारा फिर उसके द्वारा ज़मीन को मुर्दा हो जाने के बाद ज़िन्दा किसने किया? तो वे ज़रूर ही यह उत्तर देंगे कि 'अल्लाह' ने। कह दो, सारी तारीफ़ अल्लाह के लिए है। लेकिन ज़्यादातर लोग अक़्ल से काम नहीं लेते।"

(क़ुरआन, 29:63)

"आसमानों और ज़मीन की कुंजियाँ उसी के हाथ में हैं।"

(क़ुरआन, 39:63)

कायनात को पैदा करना उसे ख़त्म करके दोबारा पैदा करना सब अल्लाह के हाथ में है।

"अल्लाह ही पैदा करता है पहली बार, फिर उसको दोहराएगा, फिर तुम उसी की ओर लौटाए जाओगे।" (क़ुरआन, 30:11)

अल्लाह जैसा कोई नहीं

"उस जैसा कोई नहीं, और वह सुननेवाला और देखनेवाला है।"

(क़ुरआन, 42:11)

कायनात पर अल्लाह की हुकूमत है

"और उसी के लिए बड़ाई है आसमानों और ज़मीन में और वह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।" (क़ुरआन, 45:37)

अल्लाह यकता, बेमिसाल और बेनियाज़ है

"कहो अल्लाह एक है, वह किसी का मुहताज नहीं, सब उसके मुहताज हैं। न तो उसका कोई बेटा है और न उसका कोई बाप, और कोई भी उसके बराबर का नहीं है।" (क़ुरआन, 112:1-4)

रसूलों पर ईमान

इस्लामी अक़ीदों और ईमानियात में सबसे पहली चीज़ 'तौहीद' है और दूसरी 'रिसालत' पर ईमान है। रिसालत और उसपर ईमान का मतलब क्या है? यह जानने से पहले एक बार फिर अल्लाह पर ईमान का ख़ुलासा सामने आ जाए तो बेहतर है, क्योंकि रिसालत पर ईमान, हक़ीक़त में अल्लाह पर ईमान का एक तक़ाज़ा ही है। रिसालत पर ईमान, तौहीद पर ईमान के बग़ैर पूरा हो ही नहीं सकता। अतः अल्लाह पर ईमान का निचोड़ फिर ताज़ा कर लेना बेहतर है।

तौहीद

यह कायनात ख़ुदा के बग़ैर नहीं है। इसका एक ख़ालिक़ (पैदा करनेवाला), मालिक, हाकिम, रब (पालनहार) और माबूद है और वह एक ही है। उसका कोई साझी नहीं। ज़ात, सिफ़ात, हुक़ूक़ और अधिकारों में से किसी में भी कोई किसी हैसियत से शरीक नहीं। वह आप-से-आप सदा से है और सदा रहेगा। उसमें हर प्रकार की ख़ूबी, कमाल और क़ुदरत मौजूद है। वह हर तरह के ऐब, कमी और कोताही से पाक है। उसके सब मुहताज हैं, वह किसी का मुहताज नहीं। कायनात को उसी ने पैदा किया है और वही उसे थामे हुए है। वह उसे फ़ना करने और दोबारा पैदा करने की क़ुदरत रखता है। वह तमाम चीज़ों का इल्म रखता है, ज़र्रे-ज़र्रे और पत्ते-पत्ते का उसको इल्म है। वह दिलों के भेदों और मन में छिपी बातों को भी जानता है। दुनिया की कोई चीज़ उसके इल्म और इरादे से बाहर नहीं। उस जैसा कोई नहीं। वह कमज़ोरियों से पाक है। मख़लूक़ अपने वुजूद के लिए पैदा करनेवाले, जिस्म, दिशा और स्थान की मुहताज है, अल्लाह इन सबसे पाक है। वह क़ौम, क़बीला, ख़ानदान, बिरादरी, माँ, बाप, औलाद और नस्ल व नसब वग़ैरह से भी पाक है। वह हर तरह से यकता और कामिल (पूर्ण) है। वह पूरी कायनात की तमाम ज़रूरतें पूरी कर रहा है। मख़लूक़ की पैदाइश, ज़िन्दगी और उसके पालन-पोषण की सभी ज़रूरतें वही पूरी करता है। इनसान अपनी दुनिया और आख़िरत की भलाई के लिए जिन चीज़ों का मुहताज है उनमें से एक बड़ी और बहुत बड़ी ज़रूरत रिसालत है। अल्लाह ने इनसान की इस ज़रूरत को भी पूरा किया है।

रिसालत

इनसान अल्लाह का मुहताज है; अपनी दुनिया, आख़िरत, इबतिदा (उत्पत्ति) और इंतिहा (अन्त) बल्कि पूरी ज़िन्दगी में मुहताज है। अल्लाह ने इनसान की

हर उस ज़रूरत को पूरा किया है जो उसे दुनिया में पेश आती है, उसकी माद्दी (भौतिक) और तबई (स्वाभाविक) ज़रूरतों को भी और अख़लाक़ी (नैतिक), प्राकृतिक और हैवानी ज़रूरतों के साथ उसकी रूहानी ज़रूरतों को भी पूरा किया है । रिसालत उसकी अख़लाक़ी, रूहानी और इनसानी ज़रूरतों में से सब से अहम ज़रूरत है जिसको पूरा करने का इंतिज़ाम अल्लाह ने किया है।

● इनसान और कायनात की शुरूआत कैसे हुई? उसका पैदा करनेवाला कौन और कैसा है?

● इनसान और कायनात का अंजाम क्या होगा?

● इनसान की दुनियावी ज़िन्दगी का मक़सद क्या है?

● इनसान का ख़ुदा कौन है, उसका नसबुलऐन (उद्देश्य) निज़ामे-ज़िन्दगी (जीवन-व्यवस्था) और तरीक़ेकार (कार्य-पद्धति) क्या है?

● इनसान का क़ाइद और रहनुमा कौन है?

ये और इस तरह के जितने भी फ़ितरी (स्वाभाविक) सवाल हैं इन सबका सही जवाब देने से इनसानी अक़्ल बेबस है। इनसानी तजुर्बा और मुशाहदा (अनुभव) भी इस सिलसिले में नाकाम और बेबस हैं। इनसान तपस्याओं के ज़रिए भी आज तक उनका सही जवाब हासिल नहीं कर सका। इनसानी तारीख़ का हर पन्ना बल्कि उसकी हर लाइन मुँह से बोल रही है कि अक़्ल, तजुर्बा, मुशाहदा और विजदान (अन्तःप्रज्ञा) सब के सब कोशिश के बावजूद उन फ़ितरी सवालों का सही जवाब देने में नाकाम रहे हैं। इसलिए सिर्फ़ रिसालत ही एक ऐसा ज़रिया है जिसके द्वारा अल्लाह ने इनसान की इस ज़रूरत को पूरा किया है।

अल्लाह ने सबसे पहले इनसान हज़रत आदम (अलै०) ही को अपना रसूल बनाया, अपना पैग़ाम और अपनी हिदायतें दीं, ताकि इनसानी ज़िन्दगी की शुरूआत पूरी रौशनी में हो। उसके बाद ज़रूरत के मुताबिक़ अल्लाह हर देश और क़ौम में नबी और रसूल भेजता रहा ताकि इनसान अपने आग़ाज़ और अंजाम, अपने मक़सद और तरीक़ेकार, अपने ख़ुदा और दीन (धर्म), अपनी दुनिया और आख़िरत से बेख़बर रहकर गुमराह न हो और भटककर अपने को तबाह न कर ले, बल्कि अल्लाह की पूजा, बन्दगी, इबादत, ग़ुलामी और नबी की इताअत के ज़रिए एक ओर अपनी दुनिया बनाए-सँवारे और दूसरी ओर अपनी आख़िरत को कामयाब बनाए।

सबसे आख़िर में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अपना रसूल बनाकर भेजा और आप (सल्ल०) के ज़रिए अपनी आख़िरी हिदायतें दीं और दीन (धर्म) को पूरा करके रिसालत के उस सिलसिले को जो हज़रत आदम (अलै०) से शुरू हुआ

था, मुहम्मद (सल्ल॰) पर ख़त्म कर दिया। यह है इस्लामी अक़ीदे की दूसरी बुनियाद, रिसालत का मुख़तसर तआरुफ़ (परिचय)। अब आप रिसालत को तफ़सील के साथ क़ुरआन की आयतों की रौशनी में समझें।

अल्लाह के रसूल इनसान ही हैं

"किसी इनसान का यह काम नहीं है कि अल्लाह उसको किताब, हुक्म (फ़ैसले की ताक़त) और नुबूवत अता करे, फिर वह सब लोगों से कहे कि तुम अल्लाह को छोड़कर मेरे बन्दे हो जाओ।"

(क़ुरआन, 3:79)

"और उन्होंने अल्लाह को नहीं जाना जैसा कि उसको जानने का हक़ है, जब उन्होंने कहा कि अल्लाह ने किसी इनसान पर कुछ नहीं उतारा है।"

(क़ुरआन, 6:91)

"और (ऐ मुहम्मद)! तुमसे पहले भी हमने मर्दों ही को (रसूल बनाकर) भेजा। जिनकी ओर हमने वह्य की, वे सब बस्तियों ही में रहनेवाले इनसान थे।"

(क़ुरआन, 12:109)

"उनसे उनके रसूलों ने कहा, हम तो तुम्हारी तरह के इनसान हैं।"

(क़ुरआन, 14:11)

"(ऐ नबी!) कह दो, मैं तो तुम्हारी ही तरह एक इनसान हूँ (फ़र्क़ यह है कि) मेरी तरफ़ (अल्लाह की ओर से) 'वह्य' की जाती है।"

(क़ुरआन, 41:6)

नबी और रसूल, अल्लाह के बन्दे ही हैं

"और हमने अपने बन्दे पर जो कुछ उतारा है, अगर तुम्हें इसमें शक है तो उस जैसी कोई एक 'सूरा' (अध्याय) ले आओ।" (क़ुरआन, 2:23)

"मसीह ने कभी इस बात को नापसन्द नहीं किया कि वह अल्लाह का बन्दा है।"

(क़ुरआन, 4:172)

"पाक है वह जो (मेराज में) अपने बन्दे को रातों-रात ले गया।"

(क़ुरआन, 17:1)

"(हज़रत ईसा ने) कहा, मैं यक़ीनन अल्लाह का बन्दा ही हूँ।"

(क़ुरआन, 19:30)

"तो उसने 'वह्य' की अपने बन्दे (मुहम्मद सल्ल॰) की ओर जो कुछ भी 'वह्य' की।"

(क़ुरआन, 53:10)

नबी और रसूल उसी क़ौम के होते थे जिसकी तरफ़ उन्हें भेजा जाता था

"और हमने आद क़ौम की ओर उनके भाई हूद को भेजा।"
(क़ुरआन, 7:65)

"और समूद क़ौम की ओर उनके भाई सालेह को भेजा"
(क़ुरआन, 7:73)

"और मदयन की ओर उनके भाई शुऐब को भेजा।" (क़ुरआन, 7:85)

"तो हमने उनके अन्दर उन्हीं में से एक रसूल भेजा।" (क़ुरआन, 23:32)

"याद करो जबकि उनसे उनके भाई 'नूह' ने कहा : क्या तुम (अल्लाह से) डरते नहीं हो?" (क़ुरआन, 26:106)

"याद करो जबकि उनसे उनके भाई 'लूत' ने कहा : क्या तुम डरते नहीं हो?" (क़ुरआन, 26:161)

नबी क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) और ग़ैब के जाननेवाले नहीं होते

"(ऐ नबी!) फ़ैसले के मामले में तुम्हें कोई अधिकार नहीं।"
(क़ुरआन, 3:128)

"(ऐ नबी!) कह दो, मैं नहीं कहता कि मेरे पास अल्लाह के ख़ज़ाने हैं और न मैं ग़ैब की सारी बातें जानता हूँ।" (क़ुरआन, 6:50)

"(ऐ नबी!) कह दो, मैं न अपने भले का मालिक हूँ और न बुरे का, बस अल्लाह जो चाहता है, होता है।" (क़ुरआन, 7:188)

नबी ने कहा, "यदि मैं ग़ैब की बात जानता तो बहुत से फ़ायदे अपने लिए समेट लेता।" (क़ुरआन, 7:188)

"(ऐ नबी!) तुम जिसे हिदायत देना चाहो, नहीं दे सकते। हाँ अल्लाह जिसे चाहता है हिदायत देता है।" (क़ुरआन, 28:56)

"(ऐ नबी!) कहो, मैं तुम्हें न तो नुक़सान पहुँचाने का अधिकार रखता हूँ और न हिदायत देने का।" (क़ुरआन, 72:21)

सारे नबियों का दीन एक ही था

"जब उस (इबराहीम) से उसके 'रब' ने कहा, मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हो जा तो वह पुकार उठा, मैं सारी दुनिया के 'रब' का मुस्लिम (फ़रमाँबरदार)

हो गया। और इसी की वसीयत इबराहीम ने अपने बेटों को की और याक़ूब ने भी अपनी औलाद को की :

ऐ मेरे बेटो! अल्लाह ने तुम्हारे लिए यही दीन चुना है, तो तुम फ़रमाँबरदार ही रहकर मरना।" (क़ुरआन, 2:131-132)

वाज़ेह रहे कि हज़रत इबराहीम (अलै०) की औलाद में हज़ारों नबी पैदा हुए और आज भी दुनिया की तीन बड़ी मिल्लतें (समुदाय) (मुसलमान, ईसाई और यहूदी) उनको अपना पेशवा और अल्लाह का नबी मानती हैं।

"अल्लाह का पसन्दीदा दीन तो इस्लाम (फ़रमाँबरदारी) है। जिन्हें किताब दी गई थी, उन्होंने तो इसमें इख़तिलाफ़ इसके बाद किया कि इल्म उनके पास आ चुका था, ऐसा उन्होंने आपस में एक-दूसरे पर ज़्यादती करने के लिए किया।" (क़ुरआन, 3:19)

"(ऐ नबी!) कह दो, हम तो अल्लाह पर और उस चीज़ पर ईमान ले आए जो हम पर उतारी गई और उस चीज़ पर जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और उसकी औलाद पर उतारी गई और उस चीज़ पर जो मूसा, ईसा और दूसरे नबियों को उनके 'रब' की ओर से दी गई। हम उनमें से किसी के बीच कोई फ़र्क़ नहीं करते और हम उसी के फ़रमाँबरदार हैं। जो इस्लाम (फ़रमाँबरदारी) के सिवा कोई और दीन चाहेगा, तो उसका वह दीन हरगिज़ क़बूल न किया जाएगा और वह आख़िरत में नाकाम व नामुराद रहेगा।" (क़ुरआन, 3:84-85)

"सारे नबी जो मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) थे इसी (अल्लाह की किताब) के मुताबिक़ फ़ैसला करते रहे।" (क़ुरआन, 5:44)

इससे मालूम हुआ कि नबी सबके सब मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) थे, उनका दीन इस्लाम था और वे अल्लाह की हिदायतों के मुताबिक़ अपने मामलों और मुक़दमों के फ़ैसले करते थे।

सारे नबियों पर ईमान लाना ज़रूरी है

"कह दो, हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस चीज़ पर जो हमारी तरफ़ उतारी गई और उस चीज़ पर जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और उनकी औलाद की ओर उतारी गई, और जो मूसा और ईसा को दी गई, और जो दूसरे सभी नबियों को उनके 'रब' की ओर से मिली, हम उनमें किसी के बीच फ़र्क़ नहीं करते और हम उसी के मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हैं।" (क़ुरआन, 2:136)

"यदि वे उसी तरह ईमान लाएँ जिस तरह तुम ईमान लाए हो, तो उन्होंने हिदायत पा ली। और अगर वे मुँह मोड़ें तो वे हठधर्मी पर हैं।"
(क़ुरआन, 2:137)

"रसूल उस चीज़ पर ईमान लाया जो उसके 'रब' की ओर से उस पर उतारी गई। और ईमानवाले भी ईमान लाए। ये सब अल्लाह पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर और उसके रसूलों पर ईमान लाए। (ये कहते हैं) हम अल्लाह के रसूलों में किसी के बीच फ़र्क़ नहीं करते।"
(क़ुरआन, 2:285)

नबियों के भेजे जाने का मक़सद

"लोग एक ही उम्मत थे; (जब उन्होंने इख़तिलाफ़ किया) तो अल्लाह ने नबियों को भेजा, जो ख़ुशख़बरी देनेवाले और डरानेवाले थे और उनके साथ किताब उतारी ताकि जिन बातों में लोग इख़तिलाफ़ कर रहे थे उनका फ़ैसला करें।" (क़ुरआन, 2:213)

इस आयत से नबियों के भेजे जाने के तीन मक़सद हमारे सामने आते हैं:

(1) वे अल्लाह की इताअत और रसूलों की पैरवी करनेवालों को अल्लाह की ख़ुशनूदी और प्रसन्नता, जन्नत की नेमतों ओर जहन्नम से छुटकारे की ख़ुशख़बरी देने आए, यानी अल्लाह की बन्दगी, रसूलों की इताअत का पैग़ाम लेकर आए।

(2) वे अल्लाह के बाग़ियों, नाफ़रमानों और सरकशों को अल्लाह के ग़ज़ब, उसकी पकड़ और जहन्नम के अज़ाब से डराने आए, यानी उनका पैग़ाम यह था कि लोगो! अल्लाह की रज़ामन्दी हासिल करने और जहन्नम से छुटकारा पाने को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाओ ।

(3) अल्लाह ने उन्हें अपनी हिदायत और अपना क़ानून देकर भेजा, ताकि वे अल्लाह की ज़मीन पर अल्लाह की बन्दगी को रिवाज दें और उसके क़ानून को लागू करके लोगों के इख़तिलाफ़ों के बीच हक़ और बातिल (असत्य) को वाज़ेह कर दें।

"रसूल ख़ुशख़बरी देनेवाले और डरानेवाले बनाकर भेजे गए, ताकि रसूलों के आने के बाद लोगों के पास (अपने बेगुनाह होने की) अल्लाह के मुक़ाबले में कोई दलील न रहे।" (क़ुरआन, 4:165)

अल्लाह ने नबियों को इसलिए भेजा कि उसके बन्दे हक़ का रास्ता पा लें और हक़-बातिल के बीच फ़र्क़ ज़ाहिर हो जाए, ताकि वे आख़िरत में यह न कह सकें

कि हमें हक़ (सत्य-मार्ग) मालूम न था। नबियों को दुनिया में इसलिए भेजा गया कि अल्लाह की हुज्जत (तर्क) बन्दों पर पूरी हो जाए और वे आख़िरत में अल्लाह के मुक़ाबले में कोई दलील न दे सकें।

नबियों की दावत के तीन पहलू

"और मैं (ईसा) इसलिए आया हूँ कि जो चीज़ें तुम्हारे लिए हराम कर दी गई थीं, उन्हें तुम्हारे लिए हलाल कर दूँ। और मैं तुम्हारे 'रब' की निशानी लेकर आया हूँ तो तुम अल्लाह से डरो और मेरा कहना मानो। अल्लाह मेरा भी रब है और तुम्हारा भी। अतः उसी की इबादत करो। यही सीधा रास्ता है।" (क़ुरआन, 3:50-51)

सारे नबियों की तरह हज़रत ईसा (अलै०) की दावत के भी तीन पहलू थे :—

(1) इक़तिदारे आला (शासनाधिकार और संप्रभुता) अल्लाह के लिए ख़ास है।

(2) अल्लाह के नुमाइन्दे की हैसियत से नबी की इताअत ज़रूरी है।

(3) इनसानी ज़िन्दगी के लिए सही क़ानून और निज़ाम सिर्फ़ वह है जो अल्लाह ने उतारा है।

अल्लाह की इताअत के साथ नबियों की इताअत ज़रूरी है

अल्लाह की इताअत सिर्फ़ इसी तरह मुमकिन है कि नबियों की पैरवी की जाए; इसी लिए हर ज़माने में उस वक़्त के नबी की पैरवी लाज़मी रही है।

"कहो, कहना मानो अल्लाह का और रसूल का, तो अगर वे मुँह मोड़ें तो जान लें कि अल्लाह इनकार करनेवालों को पसन्द नहीं करता।"

(क़ुरआन, 3:32)

वह इक़रार (प्रतिज्ञा) जो सारे नबियों से लिया गया

"याद करो, जब अल्लाह ने नबियों से अहद लिया था कि मैंने तुम्हें किताब और हिकमत अता की है। अगर कोई रसूल तुम्हारे पास उस चीज़ की तसदीक़ करता हुआ आए जो तुम्हारे पास है तो तुमको उसपर ईमान लाना होगा और उसकी मदद करनी होगी। अल्लाह ने पूछा : क्या तुम इसका इक़रार करते हो और इस पर मेरी ओर से अहद की भारी ज़िम्मेदारी उठाते हो? उन्होंने कहा : हाँ, हम इक़रार करते हैं। अल्लाह ने फ़रमाया : तो फिर गवाह रहो, और मैं भी तुम्हारे साथ गवाह हूँ।"

(क़ुरआन, 3:81)

लेकिन यह इक़रार जो सारे नबियों से लिया गया, हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से नहीं लिया गया, वरना क़ुरआन और हदीस में इसका ज़िक्र ज़रूर होता।

नुबूवत और रिसालत अल्लाह ही जिसे चाहता है देता है, कोई अपनी मेहनत से उसे हासिल नहीं कर सकता

"वह उस 'रूह'(नुबूवत) को अपने जिस बन्दे पर चाहता है, अपने हुक्म से फ़रिश्तों के ज़रिए उतार देता है।" (क़ुरआन, 16:2)

"वह अपने हुक्म से जिस बन्दे पर चाहता है 'रूह' उतारता है, ताकि वह लोगों को इकट्ठा होनेवाले दिन (यानी क़ियामत) से ख़बरदार कर दे।" (क़ुरआन, 40:15)

"और इसी तरह हमने तेरी ओर एक 'रूह' अपने हुक्म से भेजी। तू न जानता था कि किताब क्या है और ईमान क्या है।" (क़ुरआन, 42:52)

"(और ऐ मुहम्मद) अगर हम चाहें तो वह सब कुछ तुमसे छीन लें जो हमने वह्य के ज़रिए तुमको दिया है, फिर तुम हमारे मुक़ाबले में कोई हिमायती न पाओगे जो उसे वापस दिला सके। यह जो कुछ तुम्हें मिला है, तुम्हारे 'रब' की रहमत से मिला है। बेशक उसका तुम पर बड़ा फ़ज़्ल है।" (क़ुरआन, 17:86-87)

नबी हर उम्मत में भेजे गए

"और हर उम्मत के लिए एक रसूल है। जब उनके पास उनका रसूल आ जाता है तो उनका फ़ैसला पूरे इनसाफ़ के साथ कर दिया जाता है और उनपर ज़रा भी ज़ुल्म नहीं किया जाता।" (क़ुरआन, 10:47)

"तुम तो सिर्फ़ ख़बरदार करनेवाले हो, और हर क़ौम के लिए एक रहनुमा (मार्गदर्शक) है।" (क़ुरआन, 13:7)

नबियों की पहचान

सच्चे और झूठे नबी की पहचान हक़ीक़त में उसकी सीरत और किरदार है, उसका पैग़ाम और अमल है, उसका मक़सद और काम करने का तरीक़ा है।

"(नबी ने कहा:) यक़ीनन मैं तुम्हारे बीच एक उम्र इससे पहले बिता चुका हूँ। क्या तुम सोचते-समझते नहीं हो।" (क़ुरआन, 10:16)

अल्लाह के नबी (सल्ल०) के बारे में दो बातें बिलकुल ज़ाहिर थीं, जिन्हें हर शख़्स जानता था। एक यह कि नुबूवत से पहले की पूरी चालीस साल की ज़िन्दगी

में आपको कोई ऐसी तालीम व तरबियत नहीं मिली थी, जिससे वह जानकारी आपको हासिल होती जिसके स्रोत यकायक नुबूवत के दावे के साथ ही आप (सल्ल०) की पाकीज़ा ज़बान से फूट पड़ें। दूसरे यह कि आपकी नुबूवत से पहले की चालीस साल की ज़िन्दगी में झूठ, धोखा, जालसाज़ी, मक्कारी आदि घटिया और बुरी बातों का धब्बा भी किसी ने नहीं देखा, बल्कि इसके ख़िलाफ़ लोग आपको सच्चा और अमानतदार समझते और कहते थे।

नबी निःस्वार्थ होते हैं

"(नूह ने कहा,) ऐ मेरी क़ौम के लोगो : मैं (इस काम पर) तुमसे कोई माल नहीं चाहता, मेरा बदला तो सिर्फ़ अल्लाह के ज़िम्मे है।"

(क़ुरआन, 11:29)

"ऐ मेरी क़ौम के लोगो : मैं इस पर तुमसे कोई बदला नहीं माँगता, मेरा बदला तो उसके ज़िम्मे है जिसने मुझे पैदा किया। क्या तुम अक़्ल से काम नही लेते?" (क़ुरआन, 11:51)

"और तुम उनसे इस काम का कोई बदला भी नहीं माँगते। यह तो एक याददिहानी है सारी दुनियावालों के लिए।" (क़ुरआन, 12:104)

नबियों की कथनी-करनी एक होती है

"मैं यह नहीं चाहता कि जिन बातों से तुमको मैं रोकता हूँ, उन्हें ख़ुद करने लग जाऊँ।" (क़ुरआन, 11:88)

नबियों का मक़सद सुधार होता है

"मैं तो बस अपनी ताक़त भर सुधार करना चाहता हूँ।"

(क़ुरआन, 11:88)

नबी सिर्फ़ मज़हब का नहीं बल्कि पूरे निज़ामे-ज़िन्दगी का सुधार करने के लिए आए थे

वक़्त के नबी ने जब भी अपना पैग़ाम पेश किया तो उस ज़माने के हुक्मरानों को अपना इक़्तिदार ख़तरे में दिखाई देने लगा। अगर नबियों का मक़सद सिर्फ़ मज़हब का सुधार होता और उन्हें सियासी और समाजी मामलों से कोई सरोकार न होता तो हुक्मरानों को यह डर बिलकुल न होता। मिसाल के तौर पर जब हज़रत मूसा (अलैहि०) ने अपना दावा और अपनी माँग फ़िरऔन के सामने रखी तो फ़ौरन दरबारियों ने आपस में कहा—

"यह तो तुम्हें तुम्हारी ज़मीन से निकालना चाहता है, तो अब तुम क्या हुक्म देते हो?" (क़ुरआन, 7:110)

नबियों की बात न माननेवालों को पछताना पड़ेगा

"उस दिन जब उसका नतीजा सामने आएगा, तो वे लोग जिन्होंने उसे इस से पहले भुला दिया था, कहेंगे, वाक़ई हमारे 'रब' के रसूल हक़ लेकर आए थे, तो अब क्या हमारे लिए कुछ सिफ़ारिश करनेवाले हैं जो हमारी सिफ़ारिश करें? या हम दुनिया में वापस भेज दिये जाएँ ताकि हम उस कर्म को छोड़कर जो हम करते थे, अच्छे कर्म करें?"

(क़ुरआन, 7:53)

आख़िरत में यह बात खुलकर सामने आ जाएगी कि नबी ही हक़ पर थे

जन्नतवाले जन्नत में कहेंगे—

"सारी तारीफ़ उस अल्लाह के लिए है, जिसने हमें सीधा रास्ता दिखाया। हम अपने-आप सीधा रास्ता न पा सकते थे, यदि अल्लाह ही हमें सच्चाई का रास्ता न दिखाता। वाक़ई हमारे 'रब' के रसूल हक़ लेकर आए थे।"

(क़ुरआन, 7:43)

"जिस दिन वह अंजाम सामने आ जाएगा तो वे लोग जो इससे पहले उसे भूले हुए थे, कहेंगे, वाक़ई हमारे 'रब' के रसूल हक़ लेकर आए थे।" (क़ुरआन, 7:53)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत

इस्लामी अक़ीदों में सबसे पहला अक़ीदा 'ला इला-ह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर-रसूलुल्लाह' है यानी अल्लाह के सिवा कोई पूजा, बन्दगी, इबादत, इताअत, और ग़ुलामी के लायक़ नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के आख़िरी और सच्चे रसूल हैं। आपके बाद अब कोई नबी और रसूल नहीं आएगा।

इस्लाम के इस बुनियादी अक़ीदे के दूसरे हिस्से पर दो पहलुओं से ग़ौर करना बहुत ज़रूरी है। एक यह कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं। दूसरे यह कि आप अल्लाह के आख़िरी रसूल हैं, इसलिए दुनिया में कामयाबी और आख़िरत में निजात (मुक्ति) का दारोमदार सिर्फ़ इस बात पर है कि इनसान आपकी तालीमात को अपनाए और ज़िन्दगी के निजी और सामाजिक सभी पहलुओं में आप (सल्ल०) की पैरवी करे।

हज़रत मुहम्मद(सल्ल०) अल्लाह के रसूल थे

सूरज निकला हुआ हो और सारी दुनिया को रोशनी और गर्मी पहुँचाकर अपने वुजूद का सुबूत दे रहा हो तो उसके लिए अलग से कोई सुबूत पेश करने और दलील लाने की क़तई ज़रूरत नहीं, क्योंकि सूरज का निकलना सूरज के वुजूद की दलील है।

और अगर कोई आदमी अन्धा हो या आँखोंवाला होने के बावजूद अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ले और कहे कि सूरज नहीं निकला है, क्योंकि मुझे नज़र नहीं आता तो उसके बारे में यही कहा जाएगा कि उस आदमी की मिसाल उस आदमी जैसी है जो आँखें बन्द करके सूरज के मौजूद होने का इनकार कर रहा है। यही हाल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत और रिसालत का इनकार करनेवालों का है क्योंकि आप (सल्ल०) अपनी दलील आप हैं। आप (सल्ल०) की नुबूवत और रिसालत के बारे में अलग से किसी दलील और सुबूत की हक़ीक़त में कोई ज़रूरत नहीं। आप (सल्ल०) ने विचार, अक़ीदे, कायनात और इनसान के बारे में नज़रिया, निजी और समाजी ज़िन्दगी के बारे में हिदायतें और अख़लाक़ी तालीमात यानी जो निज़ामे हयात पेश किया और उसके विभिन्न पहलुओं में इनसानों की जो रहनुमाई फ़रमाई वह बुनियादी तौर से बिलकुल वही है जो सारे नबियों ने पेश की थी। यह आप (सल्ल०) की नुबूवत और रिसालत का ऐसा सुबूत है जिसका इनकार नामुमकिन है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत का सबसे बड़ा सुबूत ख़ुद आप (सल्ल०)

की सीरत और किरदार है। वे हालात जिनमें आपका पालन-पोषण हुआ, जिस देश और जिस जाति का सामना करना पड़ा और नुबूवत से पहले के चालीस साल की ज़िन्दगी में जिस बेहतरीन किरदार का आपने सुबूत दिया और आप (सल्ल०) का अज़ीमुश्शान कारनामा जिसने अरब की काया पलट दी, जिसकी कोई दूसरी मिसाल नहीं; यह सब कुछ आपकी नुबूवत के लिए एक रोशन निशानी है। क़ुरआन की गवाही है—

"(नबी ने कहा:) यक़ीनन मैं तुम्हारे बीच एक उम्र गुज़ार चुका हूँ। क्या तुम सोचते-समझते नहीं।" (क़ुरआन, 10:16)

क़ुरआन ने मुहम्मद (सल्ल०) की पाकीज़ा ज़िन्दगी और आप (सल्ल०) के साथियों पर आपकी तालीमात का हैरतअंगेज़ असर और क़ुरआन की बेहतरीन बातों की ओर इशारा करते हुए कहा—

"ऐ किताबवालो, अल्लाह की निशानियों का क्यों इनकार करते हो, हालाँकि तुम ख़ुद उन्हें देखते हो।" (क़ुरआन, 3:70)

"हमने तुमको हक़ के साथ ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला बनाकर भेजा।" (क़ुरआन, 2:119)

इसके अलावा नबियों और रसूलों की वे सभी ख़ूबियाँ और ख़ासियतें जो रसूलों पर ईमान लाने के तहत सामने आ चुकी हैं; कुछ ज़्यादा ही चमक-दमक के साथ आप (सल्ल०) के अन्दर पाई जाती हैं—

(1) सारे नबियों की तरह आप (सल्ल०) भी बेग़रज़ और बेलौस (निःस्वार्थ) थे। अल्लाह की ख़ुशी, आख़िरत की कामयाबी और इनसानों की भलाई के सिवा दुनिया का कोई लालच आपके सामने न था।

(2) सारे नबियों की तरह आपकी भी कथनी और करनी एक थी। 'कहना कुछ, करना कुछ' इस तरह की बातों से आपकी ज़िन्दगी पाक थी। दोरंगी का अंश मात्र भी आपकी ज़िन्दगी में नहीं पाया जाता था।

(3) सारे नबियों की तरह आपका भी मक़सद तमाम इनसानों की निजी और सामाजिक ज़िन्दगी का सुधार था।

(4) सारे नबियों की तरह आपने भी सिर्फ़ मज़हब के सुधार को मक़सद नहीं बनाया, बल्कि पूरे निज़ामे ज़िन्दगी में इनक़िलाब और सुधार आपका मक़सद था। इसलिए आपने अमलन इनक़िलाबी तहरीक चलाकर नमूने का समाज और नमूने का राज्य क़ायम करके दुनिया को दिखा दिया।

(5) जिस तरह दूसरे नबियों पर ईमान न लानेवालों को आख़िरत में पछतावा होगा उसी तरह मुहम्मद(सल्ल०) पर ईमान न रखनेवालों को पछताना पड़ेगा।

(6) जिस तरह सारे नबियों के बारे में यह बात खुलकर आख़िरत में सामने आ जाएगी कि वे हक़ पर थे उसी तरह मुहम्मद (सल्ल०) की सच्चाई भी लोगों के सामने खुलकर आ जाएगी और हठधर्मियों की आँखें खुली की खुली रह जाएँगी।

सारे नबियों और मुहम्मद (सल्ल०) में यकसानियत आप (सल्ल०) की नुबूवत के लिए ऐसी दलील है जिसका इनकार हठधर्मी ही कर सकता है। क़ुरआन में है—

> "मुहम्मद इसके सिवा कुछ नहीं कि बस एक रसूल हैं; उनसे पहले भी रसूल गुज़र चुके हैं।" (क़ुरआन, 3:144)

क़ुरआन की सूरा अल-अनआम में बहुत-से नबियों का नाम लेकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से फ़रमाया गया है कि यही लोग अल्लाह की ओर से हिदायत पर हैं; अतः इन्हीं के रास्ते पर चलो।

इसके अलावा सोच-विचार के और भी पहलू हैं—

(1) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को जिस देश में भेजा गया था वह उस वक़्त की दुनिया की आबादी के बीच स्थित था। उस वक़्त की मालूम दुनिया एशिया, अफ़्रीक़ा और यूरोप पर सम्मिलित थी। अरब यूरोप और एशिया के लगभग बीच में स्थित है, और उस ज़माने के यूरोप का आबाद और शहरी दक्षिणी हिस्सा भी अरब से दूर न था।

(2) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को जिस क़ौम में भेजा गया था, रिसालत और इस्लामी तहरीक के लिए उससे ज़्यादा मुनासिब कोई दूसरी जाति न थीं, क्योंकि दूसरी क़ौमें अपना ज़ोर दिखाकर दम तोड़ रही थीं या दम तोड़ चुकी थीं। अरब क़ौम ताज़ादम थी, दूसरी क़ौमें तमद्दुन की तरक़्क़ी से बिगड़ चुकी थीं। वे आराम तलब, ऐशपसन्द, नीचता, बुरी आदतों और घटिया ख़्वाहिशों का शिकार हो चुकी थीं। परन्तु अरब में कोई तहज़ीब ही न थी कि तहज़ीब से पैदा होनेवाली ख़राबियाँ उनके अन्दर होतीं। अरबों में वे तमाम ख़ूबियाँ थीं, जो किसी ताज़ादम क़ौम में हो सकती हैं। वे बहादुर थे, वे फ़ैयाज़ और दरियादिल थे, वायदों के पाबन्द थे, किसी के ग़ुलाम न थे, अपनी इज़्ज़त के लिए जान देने को तैयार रहते थे, सादा ज़िन्दगी गुज़ारते थे और ऐशो इशरत से कोसों दूर थे। इसलिए नुबूवत और रिसालत के लिए उनसे ज़्यादा मुनासिब और अच्छी कोई क़ौम न थी।

(3) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने रिसालत के पैग़ाम और इस्लामी तहरीक के लिए जिस ज़बान को ज़रिया बनाया उसमें बुलंद ख़यालात को पेश करने और अल्लाह की तालीम की बारीक बातें बयान करने और दिलों पर असर डालने की जो फ़ितरी सलाहियत थी, और है, दूसरी ज़बानों में नहीं है। अरबी ज़बान और अदब के जाननेवाले इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि छोटे-छोटे जुमलों में बड़े-बड़े मज़मूनों को समेटना, मिठास और असर-अंगेज़ी वग़ैरह अरबी ज़बान की ख़ूबी है। ऐसे देश, ऐसी क़ौम और ऐसी ज़बान का चुना जाना ख़ुद मुँह से बोल रहा है कि यह अल्लाह का इन्तिज़ाम है, क्योंकि अक़्ल कहती है कि सिर्फ़ इत्तिफ़ाक़ से इन सारी बातों का जमा हो जाना बेअक़्ली की बात है।

सोचने के कुछ पहलू और भी हैं—

(i) छठी सदी ईसवी की दुनिया मौजूदा संचार-साधनों और यातायात के साधनों से महरूम थी। प्रसारण और सैरो-सियाहत (पर्यटन) की मौजूदा सहूलतों से भी उस वक़्त का इनसान महरूम था। अरब के आस-पास ईरान, रोम और मिस्र के इलाक़ों में हालाँकि कुछ विज्ञान एवं कला की चर्चा थी और तमद्दुन पाया जाता था । परन्तु उनके और अरब के बीच बहुत बड़े रेगिस्तान थे। मदरसों, स्कूलों और तालीमगाहों से भी अरब महरूम था। वहाँ कोई बाक़ायदा राज्य भी न था, हर क़बीला आज़ाद और ख़ुदमुख़्तार था। इनसान की जान, इज़्ज़त और माल की कोई क़ीमत न थी। ऐसी क़ौम और ऐसी हालत में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पैदा हुए। माँ-बाप और दादा की सरपरस्ती बचपन ही में छिन गई। लिहाज़ा तालीमो तरबियत बिलकुल नहीं मिली। थोड़े बड़े हुए तो बकरियाँ चराने लगे। जवान हुए तो अरब सौदागरों के साथ तिजारत करने लगे। अरब समाज में घुल-मिलकर रहने के बावजूद अख़लाक़, आदतों और ख़यालात में आप (सल्ल०) बिलकुल अलग थे। अरब जिन अख़लाक़ी बुराइयों, गुमराहियों, सामाजिक ख़राबियों और सियासी धाँधलियों में फँसे हुए थे, आप (सल्ल०) उनसे अलग रास्ता अपनाते थे, यहाँ तक कि आप (सल्ल०) को उन्हीं अरबों ने 'सादिक़' (सच्चा) और 'अमीन' (अमानतदार) कहकर पुकारा। बुलन्द अख़लाक़, और क़ाबिले तारीफ़ ख़ूबियों से आप (सल्ल०) की ज़िन्दगी इतनी सजी-संवरी थी, मानो पत्थरों के बीच एक हीरा चमक रहा है।

(ii) चालीस साल की शरीफ़ाना ज़िन्दगी गुज़ारने के बाद अपने चारों ओर फैली हुई जहालत, बद-अख़लाक़ी, बदनज़्मी और गुमराही से आप निकल जाना चाहते हैं और 'हिरा' नामक पहाड़ी की खोह में जाकर तनहाई में दिन और रातें गुज़ारते

हैं, अल्लाह से लौ लगाकर बैठते हैं और वह रोशनी ढूँढते हैं जिसके ज़रिए भटके हुए इनसानों की रहनुमाई और सुधार कर सकें।

(iii) फिर अचानक आप (सल्ल०) के अन्दर एक तब्दीली होती है। अल्लाह आपको अपने फ़रिश्ते के ज़रिए वह रोशनी देता है जिसकी आपको तलाश थी। अतः आपने खोह की तनहाई से निकलकर दुनिया को तौहीद (एकेश्वरवाद) का पैग़ाम सुनाया और इस्लाम (ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी) की दावत दी।

(iv) जाहिल क़ौम ने उस सच्चे और अमानतदार इनसान को— जो उनका भला चाहनेवाला था, बेग़रज़ और बेलौस था और जो अल्लाह का रसूल था— सिर्फ़ इस जुर्म में सताया कि वह उनके बाप-दादा के ख़यालात के ख़िलाफ़ फ़िक्र (विचार) और अमल की दावत क्यों देता है? लेकिन उस सच्चे इनसान ने सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशनूदी और बन्दों की भलाई के लिए किसी दुनियावी लालच के बग़ैर लोगों के ज़ुल्म सहे और गालियों के बदले दुआएँ दीं। लोग आपको बादशाह बनाने, अरब के ख़ज़ाने आपके क़दमों पर निछावर करने और जिस औरत से चाहें शादी कराने के लिए तैयार थे, मगर आपने दुनिया के मुक़ाबले में हक़ और उसका पैग़ाम फैलाने को तरजीह दी और उनकी पेशकश को ठुकरा दिया।

(v) हिरा की ग़ार (खोह) से निकलने के बाद आपमें अजीबो ग़रीब तब्दीली आ गई। आपपर जो 'वह्य' उतरती ऊँचे दर्जे की, आसान, पुरकशिश और बलीग़ (अलंकृत) ज़बान में होती, यहाँ तक कि अरब के लोग जिनको अपनी ज़बान और उसके उसलूब (शैली) पर नाज़ था, उसके आगे उनकी गरदनें झुक गईं।

(vi) हिकमत और दानाई के ऐसे गुर आपने बताए और ज़िन्दगी के सभी पहलुओं की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए ऐसे उसूल पेश किए कि दुनिया के बड़े-बड़े अक़्लमन्द सारी उम्र के तजुर्बों के बाद ही उनकी हिकमतों को समझ सकते हैं और दुनिया के तजुर्बों के बढ़ने के साथ-साथ उनकी हिकमतें भी खुलकर सामने आती जाती हैं। दुनिया के मुख़्तलिफ़ मुल्कों के क़ानून बनानेवाले इदारे प्रतिदिन अपने क़ानून में तब्दीलियाँ करते रहते हैं, लेकिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पेश किए हुए क़ानून में आज तक तब्दीली की ज़रूरत नहीं पड़ी और न क़ियामत तक पड़ेगी।

(vii) आख़िरकार हज़रत मुहम्मद(सल्ल०) ने अरबों के दिल जीत लिए और अंधकार और जहालत में भटकते हुए अरबों को ऊँचे दर्जे की मुहज़्ज़ब और सभ्य क़ौम बना दिया। उनके अख़लाक़ इतने पाकीज़ा हो गए कि आज उनके हालात पढ़नेवाले दंग रह जाते हैं। वे अरब जो दुनिया की तमाम क़ौमों से ज़्यादा

पस्त और गिरे हुए थे, आप (सल्ल०) ने उनको सियासत और हुकूमत के ऐसे गुर सिखाए कि वे इस्लाम की तालीम और शरीअत (क़ानून) को लेकर एशिया, अफ़्रीक़ा और यूरोप के दूर-दूर इलाक़ों तक फैल गए।

(viii) सिर्फ़ अरबों ही पर नहीं और सिर्फ़ उन्हीं पर नहीं जो आप पर ईमान लाए थे, बल्कि पूरी दुनिया पर आपकी तालीमात का असर पड़ा। मिसाल के तौर पर दुनिया तौहीद का सबक़ भूल चुकी थी, आपकी तालीम का यह असर पड़ा कि अल्लाह के साथ दूसरों को शरीक करनेवाली क़ौमें भी तौहीद का दावा करने पर मजबूर हो गईं। आपकी अख़लाक़ी तालीम और अख़लाक़ी उसूल दुनिया में फैल गए और बराबर फैलते जा रहे हैं। आप (सल्ल०) के क़ानून, सियासत, तहज़ीब और समाजी ज़िन्दगी के उसूलों से आज तक दुनिया फ़ायदा उठाती चली आ रही है।

(ix) सोचने की बात है कि एक शख़्स जो जहालत के अंधेरों में भटकती क़ौम और बड़े नीच और पस्त देश में पैदा हुआ, चालीस साल की उम्र तक बकरियाँ चराईं और सौदागरी करता रहा, हर तरह की तालीमो-तरबियत से महरूम रहा, उसमें ये सब ख़ूबियाँ कहाँ से जमा हो गईं और यह इल्म और यह ताक़त कहाँ से आ गई? एक ही वक़्त में आप बेमिसाल सिपहसालार भी हैं, ऊँचे दर्जे के जज भी हैं, ज़बरदस्त क़ानून बनानेवाले और लागू करनेवाले भी हैं; बेमिसाल फ़िलास्फ़र भी हैं; लाजवाब अख़लाक़ और तमद्दुन के सुधारनेवाले भी हैं; हैरतअंगेज़ सियासतदाँ भी हैं। हज़ारों कामों के बावजूद रातों को घंटों खड़े होकर अल्लाह की इबादत भी करते हैं; बाल-बच्चों का हक़ भी अदा करते हैं, ग़रीबों और पीड़ितों की मदद भी करते हैं; बादशाही मिलने पर भी एक ग़रीब आदमी की-सी ज़िन्दगी गुज़ारते हैं।

क्या ये सब बातें इसका सुबूत नहीं हैं कि आप (सल्ल०) अल्लाह के नबी थे?

(x) ये हैरत-अंगेज़ ख़ूबियों और चमत्कारों को दिखाकर आप (सल्ल०) अपनी पूजा करा सकते थे, मगर आपने हमेशा यही कहा कि ये चमत्कार मेरे अपने नहीं हैं, अल्लाह ने दिए हैं, मैं तुम्हारी ही तरह एक इनसान हूँ, बस फ़र्क़ यह है कि मेरे ऊपर अल्लाह का कलाम उतरता है।

अब बताइए ऐसे सच्चे इनसान को सच्चा क्यों न मानें? हक़ीक़त में आप अल्लाह के नबी थे। आपकी नुबूवत की दलील ख़ुद आपकी सच्चाई है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के आख़िरी रसूल हैं

अल्लाह के सभी रसूलों ने अपने बाद आनेवाले रसूल की ख़बर दी थी। आज भी आसमानी किताबों में यह ख़बर मौजूद है। लेकिन हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने न सिर्फ़ यह कि अपने बाद किसी नबी की ख़बर नहीं दी, बल्कि साफ़-साफ़ लफ़्ज़ों में ऐलान किया कि मैं आख़िरी नबी हूँ, मेरे बाद कोई नबी नहीं आएगा। क़ुरआन ने आपके आख़िरी नबी होने की ख़बर दी है—

> "(लोगो!) मुहम्मद तुम्हारे मर्दों में से किसी के बाप नहीं हैं, बल्कि वे अल्लाह के रसूल हैं और आख़िरी नबी हैं।" (क़ुरआन, 33:40)

> "याद करो जब अल्लाह ने अहद लिया था कि मैंने तुम्हें किताब और हिकमत अता की है, अगर कोई रसूल तुम्हारे पास उस तालीम की तसदीक़ करता हुआ आए जो पहले से तुम्हारे पास मौजूद है तो तुमको उसपर ईमान लाना होगा और उसकी मदद करनी होगी।" (क़ुरआन, 3:81)

क़ुरआन और हदीसों में कहीं भी मुहम्मद (सल्ल०) से किसी ऐसे वायदे का कोई ज़िक्र नहीं है। लेकिन आपके आख़िरी नबी होने का एक और सबूत क़ुरआन में मौजूद है—

> "आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन पूरा कर दिया और तुम्हारे ऊपर अपनी नेमतें पूरी कर दीं और तुम्हारे लिए इस्लाम को दीन की हैसियत से पसन्द कर लिया।" (क़ुरआन, 5:3)

जब दीन पूरा हो गया तो किसी नबी की ज़रूरत नहीं रही, इसके अलावा सोचने के कुछ पहलू और भी हैं। एक नबी के बाद दूसरे नबी के आने के तीन ही सबब हो सकते हैं—

(अ) पहले नबी की तालीम और हिदायत मिट गई हो और उसे दोबारा पेश करने की ज़रूरत हो।

(ब) पहले नबी की तालीम पूरी न हुई हो, उसे पूरा करना हो।

(स) पहले नबी की तालीम किसी ख़ास क़ौम या ख़ास ज़माने तक महदूद हो और उसे दूसरे लोगों तक भी पहुँचाना हो।

ये तीनों सबब अब नहीं रहे, क्योंकि—

(अ) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की तालीम पूरी तरह ज़िन्दा और महफ़ूज़ है।

(ब) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की तालीम मुकम्मल और जामे (व्यापक) है।

(स) आपका पैग़ाम सभी क़ौमों और सारे ज़मानों के लिए है।

लिहाज़ा अब किसी नबी के आने की ज़रूरत नहीं है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत की ख़ुसूसियात

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के आख़िरी रसूल हैं। जहाँ तक रिसालत और नुबूवत की बुनियादी ख़ूबियों का मामला है उनमें तो आप (सल्ल०) और दूसरे सभी नबी बराबर हैं, लेकिन चूँकि आप सभी नबियों और तमाम रसूलों से अफ़ज़ल हैं, इसलिए आपकी नुबूवत की कुछ ख़ुसूसियात भी हैं जो दूसरे नबियों में नहीं पाई जातीं—

(1) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत आलमगीर (विश्वव्यापी) है, किसी क़ौम, क़बीला, नस्ल, ज़बान, देश, रंग, वर्ग और पेशा आदि के साथ ख़ास नहीं है। पूरी दुनिया के तमाम इनसानों के लिए आपकी तालीमात हैं। आप सबकी ओर भेजे गए थे, इसलिएः—

(अ) आपने अल्लाह का जो तसव्वुर पेश किया वह भी सारी दुनिया के लिए है। चुनांचे क़ुरआन कहता है :

"सारी तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है जो तमाम जहानों का 'रब' है।"

(क़ुरआन, 1:1)

आपने अल्लाह को मुसलमानों का 'रब' या अरबों का 'रब' नहीं कहा, बल्कि पूरी दुनिया और तमाम जहानों का 'रब' कहा।

(ब) इसी तरह जो किताब आपपर उतरी वह भी विश्वव्यापी है—

"क़ुरआन इनसानों के लिए हिदायत और रहनुमाई है।"

"क़ुरआन उन लोगों के लिए हिदायत है जो अल्लाह से डरते हैं।"

(क़ुरआन, 2:2)

यानी इसकी दावत आम है और तमाम इनसानों के लिए हिदायत है। जिन्हें अपने अंजाम के बनने बिगड़ने की फ़िक्र हो, और इसके नतीजे में वे हक़ क़बूल करके उसके मुताबिक़ ज़िंदगी बसर करें। आपने क़ुरआन के बारे में यह नहीं कहा कि यह क़ुरैशवालों के लिए या मुसलमानों के लिए या अरबों के लिए हिदायत है। क़ुरआन ने ख़ुद भी यह नहीं कहा कि वह सिर्फ़ अरबों और क़ुरैशवालों के लिए हिदायत है और दूसरे इनसानों के लिए नहीं है।

(स) जिस तरह अल्लाह सारी दुनिया का 'रब' और क़ुरआन तमाम इनसानों के

लिए 'हिदायत' है उसी तरह मुहम्मद (सल्ल०) भी सारी दुनिया के लिए 'रहमत' हैं। आप सिर्फ़ अरबों या सिर्फ़ क़ुरैश के लिए 'रहमत' नहीं हैं। इस सिलसिले में आपकी ज़िन्दगी ख़ुद गवाह है और क़ुरआन भी इसी का ऐलान करता है कि आप सारी दुनिया के लिए 'रहमत' बनाकर भेजे गए थे।

(द) जिस तरह अल्लाह सारी दुनिया का 'रब' और क़ुरआन तमाम इनसानों के लिए 'हिदायत' और मुहम्मद (सल्ल०) सारी दुनिया के लिए 'रहमत' हैं, उसी तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की दावत भी सारी दुनिया के लिए (विश्व व्यापी) है। आपने अल्लाह की ज़ात, सिफ़ात, उसके फ़रिश्तों, उसकी किताबों, उसके रसूलों और आख़िरत पर ईमान, अल्लाह की इताअत और रसूलों की पैरवी, बुलंद अख़लाक़ी तालीमात, फ़िक्र और अमल के ऊँचे निज़ाम, नज़रिय-ए-इनसान और कायनात, जो कुछ भी आप (सल्ल०) ने पेश किया उसमें कोई चीज़ भी क़ौमियत, वतनियत, या रंग, वंश (नस्ल) और ज़बान की तंगी में सिमटी हुई नहीं है। बल्कि आपका पैग़ाम तमाम इनसानों को मुख़ातिब करता है यानी सबके लिए आम है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत की पहली ख़ासियत आलमगीरी और आफ़ाक़ियत (विश्व-व्यापकता) है।

(2) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत की दूसरी ख़ूबी 'हमेशा रहना' है। आपकी नुबूवत किसी ख़ास ज़माने या दौर के लिए नहीं है, बल्कि आपका पैग़ाम और आपकी दावत हमेशा के लिए है। आपकी नुबूवत जिस प्रकार हर तरह की हदबन्दियों से पाक है उसी तरह ज़माने की हदबन्दियों से भी पाक है। अतः क़ुरआन और हदीसों में निहायत वाज़ेह बयानात मौजूद हैं कि आप आख़िरी नबी हैं, आपके बाद कोई नबी नहीं आएगा और आपकी नुबूवत क़ियामत तक के लिए है।

(3) आपकी नुबूवत की तीसरी ख़ूबी यह है कि आपकी सीरत, आपकी तालीम और आपकी पेश की हुई हिदायत की किताब (क़ुरआन) ज्यों-की-त्यों महफ़ूज़ है, जबकि दूसरे नबियों की सीरत, उनकी तालीमात और उनकी किताबें महफ़ूज़ न रहीं। आपकी लाई हुई न सिर्फ़ किताब महफ़ूज़ है, बल्कि आपकी सीरत का एक-एक हर्फ़ एक तारीख़ी हक़ीक़त है। आपके माननेवालों यानी पैरवी करनेवालों ने जो कारनामा अंजाम दिया है वह दुनिया की किसी क़ौम और किसी मिल्लत ने अंजाम नहीं दिया। अतः—

(अ) आपकी सीरत और तालीम को जिन लोगों ने महफ़ूज़ रखा और अपने बादवालों को दिया उनकी ज़िन्दगी के हालात को भी मुसलमानों ने महफ़ूज़ कर लिया। उस फ़न का नाम 'फ़न्ने-असमाउर-रिजाल' है जिससे लाखों इनसानों का हाल मालूम होता है।

(ब) अरबों की याद्दाश्त हालाँकि भरोसे के क़ाबिल थी, मगर फिर भी याद करने पर ही बस नहीं किया गया, बल्कि नबी (सल्ल०) के क़ौल (कथन), अमल (कर्म) और आपकी पूरी ज़िन्दगी को लिखकर भी महफ़ूज़ कर लिया गया। नबी (सल्ल०) ख़ुद अपनी निगरानी में, क़ुरआन जितना उतरता था, अल्लाह की हिदायत के मुताबिक़ लिखवा देते थे। क़ुरआन के अलावा आपके हर क़ौल, हर अमल और हर हिदायत को शुरू ही से सहाबा (रज़ि०), ताबईन और तबा ताबईन (रह०) ने अपने-अपने तौर पर लिखने की कोशिश की, यहाँ तक कि किताबें तैयार हो गईं और प्रेस ईजाद हो गया।

मुख़्तसर यह कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की ख़ासियत यह है कि आपकी नुबूवत एक तारीख़ी हक़ीक़त है जबकि दूसरे नबियों और मज़हब के अलमबरदारों की तालीमात और सीरतें बिलकुल महफ़ूज़ नहीं रहीं।

(4) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत की चौथी ख़ूबी यह है कि आपकी सीरत क़ियामत तक के लोगों के लिए नमूना है। किसी की ज़िन्दगी दूसरों के लिए नमूना तभी हो सकती है जबकि वह ऐबों, ख़ामियों और कमज़ोरियों से पाक हो। अब यह बात कि किसकी ज़िन्दगी ऐब या कमज़ोरियों से पाक है, वाज़ेह और साबित नहीं हो सकती जब तक कि उसकी ज़िन्दगी का हर पहलू महफ़ूज़ और मालूम न हो। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की ज़िन्दगी का हर पहलू और हर गोशा महफ़ूज़ और मालूम है। नबी (सल्ल०) की सीरत से मुताल्लिक़ किताबें इसकी गवाह हैं कि आप (सल्ल०) की ज़िन्दगी का हर पहलू, हर गोशा और हर हिस्सा पूरी तरह रोशनी में है और कोई गोशा आँखों से ओझल नहीं है।

(5) आप (सल्ल०) की नुबूवत की पाँचवीं ख़ुसूसियत यह है कि आपकी ज़िन्दगी एक जामेअ ज़िन्दगी और आपका पैग़ाम एक जामेअ पैग़ाम है। यानी तमाम इनसान तथा इनसानी तबक़े अपनी-अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ आपकी ज़िन्दगी और पैग़ाम से रहनुमाई और हिदायत हासिल कर सकते हैं। हाकिम और महकूम, राजा और प्रजा, सरमायेदार और मज़दूर, ज़मींदार और किसान, आलिम और आम आदमी, फ़ातेह और मफ़तूह, सिपहसालार और फ़ौजी सिपाही, अफ़सर और आम लोग, शहरी और देहाती, सभ्य और असभ्य, उस्ताद और तालिबेइल्म, ताजिर और कारख़ानेदार, बीवी-बच्चोंवाले और इबादत गुज़ार, सियासतदाँ और फ़नकार, मतलब यह कि तहज़ीब और तमद्दुन के किसी भी दर्जे का इनसान और दुनिया के किसी भी तबक़े का इनसान नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी से रहनुमाई हासिल कर सकता है। ख़ुशी और ग़मी, ख़ुशहाली और बदहाली, अनिच्छा और इच्छा, गुस्सा वग़ैरह तमाम हालतों में आप (सल्ल०) की ज़िन्दगी से हिदायत हासिल कर सकता है। अल्लाह ने फ़रमाया—

"हक़ीक़त में तुम लोगों के लिए अल्लाह के रसूल में बेहतरीन नमूना है।" (क़ुरआन, 33:21)

यानी इनसानों के हर तबक़े और ज़िन्दगी की हर हालत के लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ज़िन्दगी में मिसाल और नमूना है।

(6) आप (सल्ल०) की नुबूवत की छठी ख़ूबी यह है कि आपका पैग़ाम और आपकी सीरत आज भी अमली चीज़ है और क़ियामत तक अमली रहेगी। इसमें ज़माने का साथ देने और दुनिया की तमद्दुनी तरक़्क़ी का मुक़ाबला करने की ताक़त मौजूद है। इससे भी आगे बढ़कर दुनिया को तरक़्क़ी के राज़ और ख़ूबियों और पूर्णता के गुर सिखाने की इसमें सलाहियत है। मुहम्मद (सल्ल०) का लाया हुआ दीन तमद्दुनी तरक़्क़ियों के मातहत नहीं है बल्कि उनका रहनुमा है, यह अलग बात है कि नबी (सल्ल०) के पीछे चलनेवाले खुद आप (सल्ल०) के निज़ामे-हयात की क़ीमती ताक़त से ग़ाफ़िल होकर दूसरों के दर के भिखारी बनें और इस तरह अपने को दुनिया में ज़लील और आख़िरत में रुसवा करें।

(7) नबी (सल्ल०) की नुबूवत की सातवीं ख़ूबी यह है कि आप (सल्ल०) ने जो कुछ पेश किया उसपर ख़ुद अमल करके उसका अमली नमूना पेश कर दिया और अमल का वह नमूना आज तक महफ़ूज़ है। हालाँकि अल्लाह के सभी नबियों और रसूलों ने अपने-अपने ज़माने में अपने पैग़ाम और दावत पर अमल करके हक़ की गवाही पूरी तरह दी होगी और यह हमारा ईमान और इस्लाम की तालीम भी है कि अल्लाह के पसन्दीदा और चुने हुए बन्दों ने अपने-अपने ज़मानों में अमली नमूना भी पेश किया था, लेकिन चूँकि वे सब आख़िरी नबी नहीं थे, इसलिए उनके नमूने सदा के लिए महफ़ूज़ हुए ही नहीं, मगर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) चूँकि आख़िरी रसूल थे इसलिए आपके अमल का नमूना और आपकी सीरत महफ़ूज़ रहने के लिए थी, महफ़ूज़ है और क़ियामत तक महफ़ूज़ रहेगी।

(8) नबी (सल्ल०) की नुबूवत की आठवीं ख़ूबी यह है कि आप (सल्ल०) ने सिर्फ़ कुछ मज़हबी अक़ीदे, इबादत के कुछ तरीक़े, निजी या इनफ़िरादी और समाजी ज़िन्दगी के लिए कुछ हिदायतें और अख़लाक़ के कुछ उसूल ही नहीं पेश किए बल्कि आपने कायनात और इनसान के बारे में एक ठोस और सच्चा नज़रिया, कामिल और जामेअ निज़ामे-ज़िन्दगी पेश किया जिसके तमाम अजज़ा (अंश) आपस में जुड़े हुए और मुनज़्ज़म तथा तथ्यों पर आधारित और वैज्ञानिक हैं।

(9) नौवीं ख़ूबी यह है कि नबी (सल्ल०) की दावत निरा फ़लसफ़ा और सिर्फ़ एक थ्योरी (Theory) नहीं है, बल्कि वह हरकत और अमल है जिसके सुबूत में पूरा क़ुरआन पेश किया जा सकता है और नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी इस पर

गवाह है।

(10) दसवीं ख़ूबी यह है कि नबी (सल्ल०) के पेश किए हुए दीन के ज़रिए अमन (शान्ति) की तलाश करनेवाली दुनिया की प्यास बुझाई जा सकती है। आज की सभ्य दुनिया को उन तबाह और बरबाद करनेवाले विचारों से छुटकारा मिल सकता है और दुनिया के तमाम कठिन मसलों को आसानी से हल किया जा सकता है बशर्ते कि उस फ़िक्र और अमल के निज़ाम को लागू किया जाए जो मुहम्मद (सल्ल०) ने पेश किया है।

इस्लाम के ज़रिए दुनिया की लड़ती-मरती क़ौमों को ज़िन्दगी मिल सकती है, इनसानियत को फाड़ खानेवाले, अख़लाक़ और शराफ़त को तबाह कर देनेवाले, मज़हब और रूहानियत को कुचलनेवाले साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों को मात दी जा सकती है और इनसानियत की क़द्रों को साम्यवाद और पूँजीवाद के मज़बूत पंजों से छुड़ाकर इनसानियत को भलाई और कल्याण से परिपूर्ण किया जा सकता है तो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के लाए हुए दीन इस्लाम के ज़रिए से, वरना दुनिया इसी तरह कराहती और सिसकती रहेगी।

अल्लाह हर इनसान को तौफ़ीक़ दे कि वह अल्लाह के नबी मुहम्मद (सल्ल०) की सीरत को पढ़कर और समझकर आपके दीन को क़बूल कर ले और अपनी दुनिया और आख़िरत दोनों में कामयाबी हासिल करे। आमीन!

आख़िरत पर ईमान

तौहीद और रिसालत के बाद इस्लाम का तीसरा बुनियादी अक़ीदा आख़िरत है। जिन बातों के मजमूए को 'आख़िरत पर ईमान' कहा जाता है उनका ख़ुलासा यह है—

(1) इनसान को उसके पैदा करनेवाले ने अक़्ल, शऊर और इख़तियारात का मालिक बनाया है इसलिए वह एक ज़िम्मेदार हस्ती है और अपने अल्लाह के सामने अपने सभी विचारों और कामों के सिलसिले में जवाबदेह है।

(2) मौजूदा निज़ामे-कायनात और इनसान की मौजूदा ज़िन्दगी सदा के लिए नहीं है। एक दिन ऐसा आएगा कि दुनिया ख़त्म हो जाएगी और यह निज़ाम टूट-फूट जाएगा यानी क़ियामत आ जाएगी।

(3) फिर एक दूसरी दुनिया बसाई जाएगी और दुनिया की शुरुआत से लेकर रहती दुनिया तक के सारे इनसानों को ज़िन्दा करके इकट्ठा किया जाएगा।

(4) इनसान की ज़िन्दगी का रिकार्ड तैयार हो रहा है, उसका रोज़नामचा लिखा जा रहा है। एक दिन उसका आमालनामा उसके सामने आएगा, बल्कि उसके दायें या बायें हाथ में दे दिया जाएगा और उसे ज़िन्दगी के एक-एक लम्हे का हिसाब देना होगा।

(5) हिसाब-किताब और आमाल के तौले जाने के बाद अल्लाह के फ़ैसले में जो लोग नेक साबित होंगे वे 'जन्नत' में जाएँगे और जो बुरे साबित होंगे वे जहन्नम में झोंक दिए जाएँगे।

(6) हक़ीक़ी कामयाबी और नाकामी की कसौटी मौजूदा ज़िन्दगी में सुख-दुख नहीं है, बल्कि आख़िरत की कामयाबी हक़ीक़ी कामयाबी और वहाँ की नाकामी हक़ीक़ी नाकामी है, क्योंकि वहाँ का घाटा और मुनाफ़ा दोनों हमेशा के लिए हैं। जो वहाँ नाकाम होगा हमेशा के लिए नाकाम होगा और जो वहाँ कामयाब होगा, सदा के लिए कामयाब होगा।

आख़िरत के अक़ीदे की अहमियत और उसके तमाम पहलुओं को क़ुरआन की आयतों की रोशनी में समझना बेहतर होगा।

हक़ के रास्ते पर चलने के लिए आख़िरत पर ईमान ज़रूरी है

इस्लामी अक़ीदों में आख़िरत के अक़ीदे की अहमियत इतनी ज़्यादा है कि कोई शख़्स आख़िरत पर ईमान के बग़ैर अल्लाह और उसके रसूलों पर ईमान के तक़ाज़े

को पूरा ही नहीं कर सकता और ईमान और इस्लाम के रास्ते में एक क़दम भी नहीं चल सकता। चुनांचे कुरआन में कहा गया है:

"और वे आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं।" (क़ुरआन, 2:4)

कुरआन की बताई हुई राह पर चलने के लिए जो शर्तें ज़रूरी हैं उनमें से एक शर्त यह है कि आदमी आख़िरत के अक़ीदे को दिल व दिमाग़ की गहराइयों से मानता हो वरना वह भटकता ही फिरेगा, उसे हक़ का रास्ता न मिलेगा।

हर अच्छे काम का बदला आख़िरत में मिलेगा

अल्लाह इनसान के सारे विचारों और कामों को देखता है, वह उससे उसकी पूरी ज़िन्दगी के बारे में पूछेगा। इनसान जो कुछ भी इस दुनिया में भलाइयाँ कमा रहा है, वह उस दुनिया में जमा हो रही हैं। इनसान को वहाँ भरपूर बदला और सवाब मिलेगा।

"जो भलाई कमाकर आगे भेजोगे, अल्लाह के यहाँ उसे मौजूद पाओगे। जो कुछ तुम करते हो वह सब अल्लाह देख रहा है।" (क़ुरआन, 2:110)

अल्लाह की पकड़ से छुटकारा मुमकिन नहीं

किसी जुर्म की सज़ा और अज़ाब से छुटकारे और बचाव के चार ही तरीक़े हैं—

(1) मुजरिम के बदले कोई दूसरा सज़ा भुगतने के लिए तैयार हो जाए और मुजरिम बच जाए।

(2) ऐसी ज़बरदस्त सिफ़ारिश हो कि हाकिम मुजरिम को छोड़ने पर मजबूर हो जाए।

(3) रुपये-पैसे और धन-दौलत ख़र्च करके और रिश्वत देकर कोई शख़्स जुर्म की सज़ा से अपने आपको बचा ले जाए।

(4) चौथा और आख़िरी तरीक़ा यह हो सकता है कि मुजरिम का गिरोह और जत्था बड़ा और ताक़तवर हो, वह अपने मुजरिम को ताक़त के ज़ोर से सज़ा पाने से बचा ले।

आख़िरत में इनमें से कोई भी तरीक़ा कारगर न होगा और मुजरिम किसी भी तरह अल्लाह की पकड़ से न बच सकेगा। क़ुरआन में है—

"और डरो उस दिन से जब कोई किसी के ज़रा भी काम न आएगा,
न किसी की ओर से सिफ़ारिश क़बूल की जाएगी और न फ़िदिया लेकर

छोड़ा जाएगा और न मुजरिमों को कहीं से मदद मिल सकेगी।''

(क़ुरआन, 2:48)

आख़िरत के अक़ीदे में बिगाड़ इनसान को नाकारा बना देता है

आख़िरत का इस्लामी अक़ीदा न सिर्फ़ बेअमली और बदअमली से बचाता है, बल्कि, ऊँचे विचार, अच्छे अख़लाक़ और नेक आमाल के लिए इनसान को उभारता है और नेकी, भलाई और परहेज़गारी के रास्ते पर चलाता है। इनसान जैसे ही आख़िरत के बारे में इस्लाम के सीधे रास्ते से हटता है फ़ौरन ही उसमें गिरावट आने लगती है। उसकी फ़िक्र में पस्ती, उसके अख़लाक़ में बिगाड़ और उसके आमाल में फ़साद होने लगता है। आख़िरत के अक़ीदे की पकड़ जितनी ढीली होती जाती है, इनसान उतना ही बेअमली और बदअमली की पस्ती में गिरता चला जाता है। आख़िरकार उसमें कोई हौसला बाक़ी नहीं रहता और वह एक नाकारा इनसान बन जाता है। क़ुरआन बनी इसराईल के बुरे आमाल, आराम तलबी और अल्लाह की किताब से विमुख होने की ओर इशारा करते हुए कहता है—

> ''उनका यह तरीक़ा इसलिए है कि वे कहते हैं कि हमें दोज़ख़ की आग बिलकुल न छुएगी, और अगर सज़ा मिली भी तो सिर्फ़ कुछ दिन ही नरक में रहना होगा।'' (क़ुरआन, 3:24)

बे-अमली और बदअमली की एक बड़ी वजह यह है कि इनसान अपने को अल्लाह का चहेता समझने लगे और इस ग़लत ख़याल में पड़ जाए कि मैं चाहे कुछ भी करूँ, बहरहाल 'जन्नत' में पहुँचूँगा और नजात पाऊँगा, क्योंकि मुझे फ़लाँ देवी, देवता, फ़लाँ बुज़ुर्ग और फ़लाँ पीर बचा लेंगे और अगर जहन्नम में जाना भी पड़ गया तो कुछ दिनों में गुनाहों की सज़ा काटकर हमेशा के लिए 'जन्नत' के मज़े लूटूँगा। इस तरह के ख़यालों पर भरोसा कर लेना बिलकुल ग़ैर-इस्लामी तरीक़ा है। ये ख़यालात इनसान को गुनाहों पर निडर और ढीठ बना देते हैं और इनसान हक़ के रास्ते से खुल्लम-खुल्ला मुँह फेरने लगता है।

आख़िरत का अक़ीदा— बेहिसाब ताक़त का सरचश्मा (स्रोत)

अल्लाह और आख़िरत पर ईमान इनसान को बहादुर और हौसलामन्द बनाता है। अतः तारीख़ के पन्ने गवाह हैं कि ईमानवालों के छोटे-छोटे गिरोह कई बार बातिल के बड़े-बड़े लश्करों से टकराए हैं और उन्होंने फ़तह पाई है। तालूत और जालूत का क़िस्सा बयान करते हुए आख़िरत के मतवालों की ज़बान से क़ुरआन कहता है—

> ''कितने ही छोटे गिरोह, अल्लाह के हुक्म से, बड़े गिरोहों पर फ़तह

पा चुके हैं। और अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है।"   (क़ुरआन, 2:249)

बड़े गुनाहों से बचने का फल

अगर इनसान दुनिया में बड़े-बड़े गुनाहों से बचने की कोशिश करेगा तो आख़िरत में अल्लाह उसके छोटे गुनाह उसके खाते से मिटा देगा, और अल्लाह जन्नत में उसे इज़्ज़त का मक़ाम अता करेगा।

> "अगर तुम बड़े-बड़े गुनाहों से बचते रहो जिनसे तुम्हें रोका गया है तो तुम्हारे छोटे गुनाहों को हम मिटा देंगे और हम तुम्हें इज़्ज़त की जगह दाख़िल करेंगे।"   (क़ुरआन, 4:31)

सग़ीरा (छोटे) और कबीरा (बड़े) गुनाहों के बारे में उलेमा ने बहुत-सी बातें कही हैं उनका ख़ुलासा यह है—

(1) अल्लाह के बन्दों का या ख़ुद अपनी जान का हक़ मारना कबीरा गुनाह है।

(2) जिस काम में अल्लाह से बेख़ौफ़ी और उसके मुक़ाबले में ढिठाई जितनी ज़्यादा होगी वह काम उतना ही कबीरा गुनाहवाला होगा।

(3) क़ुरआन और हदीस में जिन गुनाहों पर सख़्त सज़ा की धमकी है वे कबीरा गुनाह हैं, जैसे अल्लाह के साथ किसी को शरीक और साझी बनाना, माता-पिता के हुक़ूक़ अदा न करना, किसी की इज़्ज़त, जान या माल को बरबाद करना।

(4) जिस गुनाह की सज़ा शरीयत में मुक़र्रर है वह कबीरा है, जैसे चोरी, ज़िना और शराब पीना वग़ैरह।

(5) कोई भी गुनाह (सग़ीरा) अगर बार-बार किया जाए तो कबीरा (बड़ा) हो जाता है।

(6) जो गुनाह जान-बूझकर और पूरे इरादे से किया जाए वह कबीरा और जो गुनाह अनजाने में हो जाए वह सग़ीरा है।

कबीरा गुनाहों से अगर इनसान बचा रहे तो इनशाअल्लाह उसके सग़ीरा गुनाह माफ़ हो जाएँगे और वह आख़िरत में नजात पा जाएगा।

आख़िरत में हक़ की गवाही के बारे में पूछताछ होगी

आख़िरत में जहाँ इनसान के विचारों, ख़यालात, अख़लाक़, आमाल, मामलात, इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) और इजतिमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं और पूरी ज़िन्दगी की तमाम दौड़-धूप के बारे में पूछा जाएगा, उसी के साथ-साथ उससे

यह भी पूछा जाएगा कि उसने मुसलमान की हैसियत से इस्लाम पर चलने के साथ-साथ उसे दूसरों तक पहुँचाया या नहीं? भलाइयों का हुक्म देने और बुराइयों को रोकने की ज़िम्मेदारी कहाँ तक पूरी की? अल्लाह के कलिमे को ऊँचा करने का फ़र्ज़ कहाँ तक निभाया? दीन को क़ायम करने की कोशिश में जान और माल कहाँ तक लगाया? कथनी और करनी से कहाँ तक हक़ की गवाही दी? उससे यह भी पूछा जाएगा कि तुम्हारी ज़िन्दगी से, तुम्हारे समाज, माहौल और सोसाइटी से, तुम्हारे इजतिमाई किरदार और रवैए से, तुम्हारे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय (International) तअल्लुक़ात से हक़ चलता-फिरता और जीता-जागता नज़र आता था या नहीं?

जिस तरह नबी (सल्ल०) तुम्हारे सामने हक़ के गवाह बनकर खड़े हुए थे क्या तुम भी उसी तरह अल्लाह के बन्दों के सामने हक़ के गवाह बनकर खड़े हुए थे?

> "और इसी तरह, हमने तुम्हें बीच की उम्मत बनाया है, ताकि तुम लोगों पर गवाह हो और रसूल तुम पर गवाह हो।" (क़ुरआन, 2:143)

गुमराह पेशवाओं और उनके पीछे चलनेवालों का अंजाम

दुनिया में तरह-तरह के नज़रिए और निज़ाम पाए जाते हैं; उनमें से रसूलों के पेश किए हुए नज़रिए और निज़ाम के अलावा जो लोग दूसरे नज़रियों और निज़ामों की ओर बुलाते हैं, ख़ुद भी गुमराह होते, भटकते और ठोकरें खाते हैं और अल्लाह के बन्दों को कुफ़्र, शिर्क और इलहाद (नास्तिकता) के दलदल में फँसाते और बुराइयों और गुनाहों की काँटेदार झाड़ियों में उलझाते हैं। इसके नतीजे में दुनिया का अमन और चैन ग़ारत हो जाता है और दुनिया फ़ितना और फ़साद से भर जाती है।

ये लोग जब अल्लाह के सामने हाज़िर होंगे, और—

(1) अल्लाह का अज़ाब देखेंगे, और

(2) यह हक़ीक़त उनके सामने खुलकर आ जाएगी कि ताक़त, ग़लबा, और इक़तिदार सब कुछ अल्लाह के हाथ में है, और

(3) यह कि अल्लाह का अज़ाब बहुत सख़्त है तो वे अपने पीछे चलनेवालों का साथ छोड़ देंगे और उनके कुछ काम न आएँगे, और

(4) वे देखेंगे कि उन्हें दुनिया में जो असबाब, ज़राए-वसाइल और इक़तिदार वग़ैरह हासिल थे वे सब छिन चुके हैं, और

(5) उनके पीछे चलनेवाले तमन्ना करेंगे कि अगर हमें एक बार फिर दुनिया

में जाने का मौक़ा मिले तो हम उनसे उसी तरह दूर रहेंगे, जिस तरह वे हमसे दूर भाग गए हैं। अल्लाह उन नेताओं और उनके पीछे चलनेवालों को उनकी करतूतों का भरपूर बदला देगा, वे दोज़ख के अज़ाब से कभी छुटकारा न पा सकेंगे।

(क़ुरआन, 2:166-167)

दुनियापरस्तों के लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं

ज़िन्दगी में बहुत से नज़रियात पाए जाते हैं लेकिन अगर ग़ौर किया जाए तो ये हक़ीक़त में दो ही हैं—

(1) एक अल्लाह की इबादत और ग़ुलामी का नज़रिया जिसमें इनसान की फ़िक्र व नज़र, उसके अख़लाक़, आमाल और मामले, इनफ़िरादी ज़िन्दगी के शोबे, और इजतिमाई ज़िन्दगी के मैदान, सब ख़ुदापरस्ती की बुनियाद पर तामीर होते हैं। और आख़िरत में कामयाबी और नाकामी के उसूल पर ज़िन्दगी की कामयाबी और नाकामी को जाँचा जाता है।

ज़िन्दगी की इस विचारधारा के तहत फ़र्द (व्यक्ति) और स्टेट (state) की सतह पर हर वह काम मुफ़ीद और पसन्दीदा होता है जो आख़िरत में मुफ़ीद और फलदायक हो और हर उस काम से बचा जाता है जो आख़िरत में नुक़सानदेह और बेनतीजा हो।

(2) इसके विपरीत दुनियापरस्ती के नज़रिए के तहत जो ज़िन्दगी फूलती-फलती है, उसमें हर वह काम फ़ायदेमन्द और अच्छा होता है जो दुनिया में फ़ायदेमन्द हो, चाहे दीन- धर्म और अख़लाक़ व आख़िरत के नुक़ता-ए-नज़र से कितना ही घिनौना और नुक़सानदेह हो। इसी तरह इस नुक़ता-ए-नज़र में हर वह काम बुरा और ख़राब शुमार होता है जो दुनिया की नज़र में नुक़सानदेह मालूम हो, चाहे वह आख़िरत में कितना ही अच्छा फल देनेवाला और अल्लाह की नज़र में चाहे कितना ही पसन्दीदा हो। दुनिया ही को सब कुछ समझनेवालों और जान व माल खपानेवालों को जो कुछ मिलना है दुनिया ही में मिल जाएगा लेकिन आख़िरत में वे ख़ाली हाथ होंगे, वहाँ वे नाकाम रहेंगे। दुनियापरस्तों को इस्लाम आगाह करता है कि आख़िरत में उनके लिए कोई हिस्सा नहीं है।

> ''जो कहता है, ऐ हमारे 'रब' हमे दुनिया ही में सब कुछ दे दे, उसके लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं है।'' (क़ुरआन, 2:200)

आख़िरत की कामयाबी का दारोमदार परहेज़गारी की ज़िन्दगी पर है

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''दुनिया आख़िरत की खेती है।''

दुनिया में जो बोया जाएगा वहाँ वही तैयार मिलेगा, यहाँ काँटे बोओगे तो वहाँ काँटे ही मिलेंगे, यहाँ गेहूँ की खेती करोगे तो वहाँ गेहूँ तैयार मिलेंगे, यहाँ मेवों के बाग़ लगाओगे तो वहाँ मेवों के बाग़ लहलहाते पाओगे। यानी जैसी करनी वैसी भरनी। इसी प्रकार अल्लाह के डर और ख़ौफ़ की बुनियाद पर ज़िन्दगी की तामीर करोगे तो आख़िरत में अल्लाह तुम्हें अपनी नेमतें अता करेगा। अल्लाह के हुक्मों की पाबन्दी करोगे और उसके मना किए हुए कामों से बचोगे तो अल्लाह तुम्हें कामयाब करेगा। ज़िन्दगी तक़वा और परहेज़गारी की बुनियाद पर गुज़ारोगे तो अल्लाह तुम्हें कामयाब करेगा। और अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में अल्लाह को मौजूद समझकर फूँक-फूँककर क़दम रखोगे तो अल्लाह तुम्हें अपनी ख़ुशनूदी (प्रसन्नता) के क़ीमती इनामों से नवाज़ेगा। आख़िरत में भलाई का दारोमदार तक़वा और परहेज़गारी पर है, दुनिया के ख़ज़ानों, ऐशो इशरत के सामानों, दुनिया के ओहदों (पदों) और इक़तिदार की कुर्सी पर नहीं है। आख़िरत की कामयाबी तो अल्लाह से डर कर ज़िन्दगी गुज़ारने में ही है।

> "क़ियामत के दिन वे लोग उनसे ऊँचे होंगे जो अल्लाह से डरकर ज़िन्दगी गुज़ारते रहे।" (क़ुरआन, 2:212)

ईमान मुजमल

आमन्तु बिल्लाहि कमा हु-व बि-अस्माइ-ही व सिफ़ातिही व क़बिल्तु जमी-अ अहकामिही।

यानी ईमान लाया मैं अल्लाह पर जैसा कि वह अपने नामों और सिफ़ात के साथ है और मैंने उसके सभी अहकाम क़बूल किए।

'ईमान मुजमल' का मतलब है ईमान और अक़ीदे के सिलसिले की तमाम चीज़ों को मुख़तसर और संक्षिप्त रूप में बिना किसी तफ़सील के मानना और तसलीम करना। ईमान मुजमल में सिर्फ़ दो बातें हैं, लेकिन उसमें पूरा इस्लाम सिमटकर आ गया है—

(1) अल्लाह और उसके सभी नामों और उसकी सारी सिफ़तों पर ईमान और

(2) उसके सारे अहकाम को क़बूल करना और उनपर ईमान लाना।

इस्लामी तालीमात का ख़ुलासा ईमान और अमल है। ये दोनों किसी तफ़सील के बग़ैर ईमान मुजमल में मौजूद हैं।

ईमान मुफ़स्सल

आमन्तु बिल्लाहि व मलाइकतिही व कुतुबिही व रुसुलिही, वल् यौमिल् आख़िरि, वल क़दरि ख़ैरिही व शर्रिही मिनल्लाहि त-आला, वल ब-असि ब-अदल मौत।

यानी ईमान लाया मैं अल्लाह पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर, उसके रसूलों पर और आख़िरत के दिन पर। और इस बात पर कि अच्छी या बुरी तक़दीर अल्लाह ही की तरफ़ से है और मरने के बाद दोबारा ज़िन्दा (किए जाने और हिसाब किताब के लिए) उठाए जाने पर।

अल्लाह पर ईमान मुजमल यह है कि उसकी ज़ात और सिफ़ात को जैसी कि वे हैं, बिना किसी तफ़सील व विस्तार के माना और तसलीम किया जाए, और ईमान मुफ़स्सल यह है कि उसकी एक-एक सिफ़त को अलग-अलग तसलीम किया जाए। इसी तरह फ़रिश्तों पर ईमान मुजमल यह है कि जितने भी फ़रिश्ते अल्लाह ने पैदा किए हैं और जिन कामों पर उन्हें लगा रखा है, बिना किसी तफ़सील के जैसा कुछ वे हैं, उन्हें माना और तसलीम किया जाए। और ईमान मुफ़स्सल यह है कि जिन फ़रिश्तों के नाम और काम हमें बताए गए हैं उसी तफ़सील के साथ उन्हें माना और तसलीम किया जाए। इसी तरह किताबों पर ईमान मुजमल यह है कि अल्लाह ने किसी ज़माने में, किसी मक़ाम में और किसी नबी पर अपनी जो भी किताबें अपने बन्दों की हिदायत के लिए नाज़िल की हैं उनको माना और तसलीम किया जाए। और ईमान मुफ़स्सल यह है कि जिन किताबों के नाम और यह कि वे किन नबियों पर नाज़िल हुईं और उनकी पैरवी करनेवालों ने उनके साथ क्या बरताव किया और अब उनकी हैसियत और मक़ाम क्या हैं? उनके बारे में क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल०) ने जो कुछ विस्तार से बताया है सबको माना और तसलीम किया जाए। इसी प्रकार रसूलों पर मुजमल ईमान यह है कि जितने भी नबी और रसूल किसी क़ौम या किसी ज़माने में अल्लाह तआला ने भेजे, सबको माना और तसलीम किया जाए। और ईमान मुफ़स्सल यह है कि जिन नबियों और रसूलों के नाम और उनकी बुनियादी दावत, उनके काम के तरीक़े और तारीख़ वग़ैरह क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल०) ने हमें बताई हैं, सबको माना और तसलीम किया जाए। इसी तरह आख़िरत पर मुजमल ईमान यह है कि आख़िरत और ज़िन्दगी बाद मौत के बारे में क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल०) ने जो कुछ तालीमात पेश की हैं, सबको जैसी कुछ वे हैं वैसी ही माना और तसलीम किया जाए और ईमान मुफ़स्सल यह है कि आख़िरत के मुताल्लिक़ जो कुछ तफ़सीलें क़ुरआन और सुन्नत

में बयान हुई हैं, सबको तफ़सील के साथ माना और तसलीम किया जाए। इसी प्रकार तक़दीर और मौत के बाद उठाए जाने के बारे में ईमान मुजमल यह है कि इस सिलसिले में जो कुछ भी अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) की तालीम है उसे बिना किसी घट-बढ़ के तसलीम किया जाए और ईमान मुफ़स्सल यह है कि इस सिलसिले की सारी जुज़ियात को भी विस्तार के साथ माना और तसलीम किया जाए।

बहरहाल, तमाम ईमानियात पर मुजमल (संक्षिप्त) और तफ़सीली (विस्तार से) दोनों तरह ईमान लाना ज़रूरी है। ईमान मुफ़स्सल में जिन सात चीज़ों का बयान है उनमें से तौहीद, रिसालत और आख़िरत पर ईमान का ज़िक्र हो चुका है। फ़रिश्तों, किताबों, तक़दीर और मौत के बाद उठाए जाने पर ईमान का ज़िक्र बाक़ी है।

इनका तफ़सीली बयान आगे किया जा रहा है।

फ़रिश्तों पर ईमान

फ़रिश्ते अल्लाह की एक मख़लूक़ हैं। इनसान मिट्टी से, जिन्न आग से और फ़रिश्ते नूर से पैदा किए गए हैं। फ़रिश्ते न मर्द हैं न औरत। वे हमारी नज़रों से ओझल हैं। वे अल्लाह की नाफ़रमानी नहीं कर सकते। जिन कामों पर अल्लाह ने उन्हें लगा दिया है, उनपर लगे हुए हैं। उनकी तादाद अल्लाह के सिवा किसी को नहीं मालूम। हाँ, हम सिर्फ़ इतना जानते हैं कि उनकी तादाद बहुत ज़्यादा है। चार फ़रिश्ते अल्लाह से ज़्यादा क़रीब हैं।

(1) हज़रत जिबरील (अलै०)

ये अल्लाह की किताबें, उसके अहकाम और पैग़ाम नबियों तक पहुँचाते थे। दुनिया में अल्लाह के बाग़ियों और नाफ़रमानों पर अज़ाब भी इन्हीं के ज़रिए भेजा गया था और अब भी यह काम उनका ही है। इसके अलावा सारे फ़रिश्तों की तरह अल्लाह का ज़िक्र और तसबीह करना भी इनका काम है।

(2) हज़रत मीकाईल (अलै०)

यह मख़लूक़ को रोज़ी पहुँचाने के काम पर लगे हुए हैं। बारिश का इन्तिज़ाम भी इनके ज़िम्मे है। बहुत से फ़रिश्ते इनकी मातहती में काम करते हैं जो बादलों, हवाओं, नदियों, तालाबों और नहरों वग़ैरह पर मुक़र्रर हैं और अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ काम करते हैं।

(3) हज़रत इसराफ़ील (अलै०)

यह मुँह में सूर लिए और कान लगाए तैयार खड़े हैं कि कब अल्लाह का हुक्म हो और सूर में फूँक मारें। फूँक मारते ही उसकी भयानक आवाज़ और गड़गड़ाहट से पूरी कायनात ख़त्म हो जाएगी। मौजूदा दुनिया उलट-पलट जाएगी। इसी हालत को क़ियामत कहते हैं। फिर एक अर्से के बाद अल्लाह के हुक्म से हज़रत इसराफ़ील (अलै०) दोबारा सूर में फूँक मारेंगे। उसकी आवाज़ से अगले-पिछले सारे इनसान ज़िन्दा हो जाएँगे, एक नई और दूसरी दुनिया क़ायम होगी। सारे इनसान एक बड़े मैदान में जमा होंगे। इसी को 'हश्र' कहते हैं, फिर हिसाब-किताब होगा, आमाल को तौला जाएगा, सबको 'सिरात' पुल पर से गुज़रना होगा, फिर अल्लाह के वफ़ादारों और फ़रमाबरदारों को जन्नत मिलेगी और बाग़ियों और नाफ़रमानों को जहन्नम में झोंक दिया जाएगा।

(4) हज़रत इज़राईल (अलै०)

यह मख़लूक़ की जान निकालने पर मुक़र्रर हैं और बेशुमार फ़रिश्ते इनकी मातहती में काम करते हैं। अच्छे इनसानों की जान निकालनेवाले फ़रिश्ते अलग हैं और बुरे लोगों की जान निकालनेवाले अलग।

इन चार फ़रिश्तों के अलावा कुछ और मशहूर फ़रिश्ते हैं।

उनके नाम और काम ये हैं—

किरामन-कातिबीन

हर इनसान के साथ दो फ़रिश्ते रहते हैं जो उसका रोज़नामचा तैयार करते रहते हैं, उसके कारनामे और करतूत लिखते रहते हैं। एक फ़रिश्ता अच्छाइयाँ लिखता है और दूसरा बुराइयाँ लिखता है। इन फ़रिश्तों को 'किरामन कातिबीन' यानी बुज़ुर्ग लिखनेवाले कहा जाता है।

ह-फ़-ज़ा

कुछ फ़रिश्ते आफ़तों, बलाओं और मुसीबतों से हिफ़ाज़त करने के काम में लगे हुए हैं। ये बच्चों, बूढ़ों और कमज़ोरों, जिनके बारे में अल्लाह का हुक्म होता है, उनकी हिफ़ाज़त करते हैं। इन्हें 'ह-फ़-ज़ा' यानी हिफ़ाज़त करनेवाला कहा जाता है।

मुनकर-नकीर

कुछ फ़रिश्ते इनसान के मरने के बाद 'बरज़ख़' (दुनिया और आख़िरत के बीच की दुनिया) में उससे कुछ सवाल करते हैं। हर इनसान के पास दो फ़रिश्ते आते हैं और तीन सवाल करते हैं—

(1) तुम्हारा 'रब' कौन है? तुमने दुनिया में किसको 'रब', पालनहार, मालिक और परवरदिगार समझकर ज़िन्दगी गुज़ारी।

(2) तुम्हारा दीन (धर्म) क्या था? तुमने किस दीन की पैरवी में ज़िन्दगी गुज़ारी थी।

(3) ये (हज़रत मुहम्मद सल्ल० की ओर इशारा करके) कौन हैं?

ये फ़रिश्ते चूँकि अजनबी होंगे इसलिए उन्हें 'मुनकर- नकीर' कहा जाता है।

ख़ुसूसी रिपोर्ट देनेवाले

कुछ फ़रिश्ते ऐसी मजलिसों की ख़ुसूसी रिपोर्ट पेश करने पर मुक़र्रर हैं जिनमें अल्लाह का ज़िक्र, उसकी किताब की तिलावत और उसके दीन की बातें हो रही

हों और उसका कलिमा ऊँचा करने की तदबीरें सोची जा रही हों। ये फ़रिश्ते उन मजलिसों में शरीक होते हैं और वहाँ की रिपोर्ट और उसमें शरीक होनेवालों की गवाही अल्लाह के सामने पेश करते है।

जन्नत और जहन्नम के इन्तिज़ाम करनेवाले

कुछ फ़रिश्ते जन्नत और जहन्नम के इन्तिज़ाम पर मुक़र्रर हैं। जन्नत के मुंतज़िम का नाम 'रिज़वान' और जहन्नम के मुंतिज़म का नाम 'मालिक' है।

हामिलीने-अर्श

कुछ फ़रिश्ते अल्लाह के अर्श को उठाए हुए हैं उन्हें 'हामिलीने-अर्श' कहते हैं।

'आबिद' और 'ज़ाकिर' फ़रिश्ते

बहुत से फ़रिश्ते अल्लाह की याद, तसबीह और उसकी पाकी बयान करने में लगे रहते हैं। दिन-रात बस उनका यही काम है।

फ़रिश्तों पर ईमान की ज़रूरत

शिर्क करनेवालों ने अल्लाह के साथ जिन चीज़ों को शरीक किया है, उनमें माद्दी और ग़ैर माद्दी, जानदार और बेजान सभी शामिल हैं। 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं) से इन सबका इनकार हो जाता है। मगर वह मख़लूक़ जो इनसानों की नज़रों से ओझल है और कायनात में अलग-अलग इन्तिज़ामात पर लगी हुई है उसे हर ज़माने के मुशरिकों ने किसी न किसी नाम से पूजा और उन्हें अल्लाह का शरीक ठहराया है। हमारे देश के मुशरिक भी उसी मख़लूक़ को देवी-देवताओं के नाम देकर पूजते हैं। फ़रिश्तों पर ईमान का ख़ास मक़सद यही है कि इनसान के दिमाग़ में यह बात बैठ जाए कि ये कायनात का इन्तिज़ाम करनेवाली ताक़तें आज़ाद और ख़ुदमुख़तार नहीं हैं, बल्कि अल्लाह की मख़लूक़ और उसकी ताबेदार हैं। वे उसकी नाफ़रमानी की ताक़त ही नहीं रखते। अल्लाह ने जिन कामों पर उन्हें लगा दिया है, लगी हुई हैं। वे ज़रा भी उसके हुक्म के ख़िलाफ़ नहीं कर सकतीं। फ़रिश्ते इनसानों के बराबर भी नहीं हैं। इनसान उनको पूजकर अपनी तौहीन करता है। अतः अल्लाह के सिवा किसी और के आगे झुकना इनसान के लिए कैसे सही हो सकता है? इस्लाम की नज़र में इनसान का दर्जा अल्लाह के अलावा सबसे ऊँचा है, फ़रिश्तों से भी ऊँचा।

किताबों पर ईमान

अल्लाह इनसान का ख़ालिक़, मालिक और हाकिम है, रब और पालनहार है। उसने इनसान की तमाम ज़रूरतें पूरी की हैं, वे ज़रूरतें भी जिन पर उसकी ज़िन्दगी का दारोमदार है, वे ज़रूरतें भी जिन पर उसका पलना-बढ़ना मुनहसिर है, और वे ज़रूरतें भी जिनके बग़ैर वह इनसानों की तरह ज़िन्दगी नहीं गुज़ार सकता और जिनके बग़ैर वह जानवरों से भी ज़्यादा बुरा हो जाता है। उसने इनसान को उसकी पैदाइश का मक़सद बताया, उसको मंज़िल की पहचान बताई और शरीफ़ाना ज़िन्दगी का ढंग सिखाया।

इनसान की फ़िक्री और अमली रहनुमाई के लिए उसने अपने नबी और रसूल भेजे और उनपर अपनी 'वह्य' और किताबें उतारी। जिस तरह हमें नबियों और रसूलों की तादाद नहीं मालूम उसी तरह आसमान से उतरी हुई किताबों की ठीक तादाद भी हमें नहीं मालूम। हाँ, इतना मालूम है कि मुख़्तलिफ़ नबियों पर मुख़्तलिफ़ किताबें उतरीं और अल्लाह ने हर ज़माने में अपने बन्दों की रहनुमाई का इंतिज़ाम किया। अल्लाह ने हर क़ौम में नबी भेजे और उनपर किताबें उतारीं।

मशहूर किताबें

(1) तौरैत— यह किताब हज़रत मूसा (अलै०) पर नाज़िल हुई।

(2) ज़बूर — यह हज़रत दाऊद (अलै०) पर उतरी।

(3) इनजील— यह हज़रत ईसा (अलै०) पर उतरी।

(4) क़ुरआन मजीद— यह अल्लाह की आख़िरी किताब है जो अल्लाह के आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर नाज़िल हुई।

अल्लाह ने अपने बन्दों की रहनुमाई के लिए जितनी किताबें उतारीं, उन सब पर ईमान लाना ज़रूरी है। लेकिन चूँकि क़ुरआन के अलावा दूसरी किताबें महफ़ूज़ नहीं रहीं, इसलिए अमल सिर्फ़ क़ुरआन की तालीमात पर किया जाएगा। क़ुरआन पर अमल करना हक़ीक़त में तमाम आसमानी किताबों पर अमल करना है। क्योंकि क़ुरआन आसमानी किताबों का आख़िरी एडीशन (संस्करण) है। पिछली किताबों की तालीम असली शक्ल में क़ुरआन में मौजूद और महफ़ूज़ है।

क़ुरआन की ख़ुसूसियात

क़ुरआन लानेवाले नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जो ख़ुसूसियात हैं वही क़ुरआन की भी ख़ुसूसियात हैं।

(1) क़ुरआन का पैग़ाम और तालीम सारी दुनिया के लिए है। वह किसी क़ौम, क़बीला, नस्ल, ज़बान, वतन, रंग और पेशा या तबक़े वग़ैरह के साथ मख़सूस नहीं है। इसका ख़िताब पूरी इनसानियत से है, मगर पिछली आसमानी किताबों का पैग़ाम और तालीम मख़सूस क़ौमों तक महदूद थी।

(2) क़ुरआन की दावत, तालीम और पैग़ाम हमेशा के लिए है। किसी ख़ास ज़माने और मुद्दत के लिए नहीं है, बल्कि रहती दुनिया तक के लिए है। क़ुरआन से पहले की आसमानी किताबें अपने-अपने ज़माने के लिए थीं, परन्तु क़ुरआन दुनिया के आख़िरी लम्हे तक के लिए है।

(3) क़ुरआन की तालीम और उसके अलफ़ाज़ ज्यों के त्यों महफ़ूज़ हैं जबकि दूसरी किताबों की तालीम और अलफ़ाज़ दोनों में फेर-बदल हो गया है। क़ुरआन अपने अलफ़ाज़, मानी, मतलब, तालीम और पैग़ाम हर पहलू से महफ़ूज़ और भरोसे व एतबार के क़ाबिल है। दूसरी आसमानी किताबें किसी भी पहलू से महफ़ूज़ और एतबार के क़ाबिल नहीं हैं। तारीख़ और दूसरी आसमानी किताबें गवाह हैं कि क़ुरआन महफ़ूज़ है।

(4) क़ुरआन की तालीम रहती दुनिया तक के इनसानों के लिए पैरवी के लायक़ है, क्योंकि वह इनसानी फ़िक्र की कमज़ोरियों से पाक है. जबकि दूसरी आसमानी किताबें इनसानी फ़िक्र की दख़लअंदाज़ी से महफ़ूज़ नहीं रहीं।

(5) क़ुरआन की तालीम जामेअ है, यानी सारे इनसान और तबक़े अपनी-अपनी ज़रूरत और हैसियत के मुताबिक़ क़ुरआन से हिदायत और रहनुमाई हासिल कर सकते हैं। हाकिम और महकूम, सरमायादार और मज़दूर, ज़मींदार और किसान, लीडर और अवाम, फ़ातेह और मफ़तूह, शहरी और देहाती, मुहज़्ज़ब और ग़ैर मुहज़्ज़ब, सियासतदाँ और फ़नकार वग़ैरह सभी तबक़ों के लोग अपनी इनफ़िरादी और इजतिमाई ज़िन्दगी के लिए क़ुरआन से रहनुमाई पा सकते हैं।

(6) क़ुरआन की एक ख़ूबी यह है कि इसकी तालीम आज भी अमली है और रहती दुनिया तक अमली रहेगी, यानी इसमें ज़माने का साथ देने की लचक और दुनिया की तहज़ीबी तरक़्क़ी का मुक़ाबला करने की ताक़त है। इससे भी ज़्यादा क़ुरआन दुनिया को तरक़्क़ी के राज़ और परिपूर्णता के गुर सिखाने की क़ाबलियत

रखता है। क़ुरआन ज़माने और तहज़ीबी तरक़्क़ी का मातहत नहीं है, बल्कि रहनुमा और रास्ता बतानेवाला है।

(7) क़ुरआन की एक ख़ूबी यह है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने क़ुरआन की तालीम के मुताबिक़ एक सोसाइटी और एक स्टेट क़ायम करके निजी और इजतिमाई ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं के लिए अमली नमूना पेश कर दिया है जो आज तक महफ़ूज़ है। यह अमली नमूना क़ुरआन की सही तफ़सीर है।

(8) दूसरी आसमानी किताबों के बरख़िलाफ़ क़ुरआन सिर्फ़ कुछ मज़हबी अक़ीदे, इबादत के कुछ तरीक़े, इनफ़िरादी और समाजी ज़िन्दगी के लिए कुछ हिदायतें और अख़लाक़ के कुछ उसूल ही पेश नहीं करता, बल्कि उसने कायनात और इनसान के बारे में एक ठोस और सच्चा नज़रिया पेश करने के साथ-साथ इनसानी ज़िन्दगी के लिए पूरा और जामेअ निज़ामे-हयात (ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा) पेश किया है। जिसके हिस्से आपस में एक-दूसरे से जुड़े हुऐ हैं, जो साइंटिफ़िक, मुनज़्ज़म, सिस्टमेटिक और तहक़ीक़ी है और ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं पर हावी है।

(9) क़ुरआन का पैग़ाम निरा फ़लसफ़ा और सिर्फ़ एक नज़रिया (theory) नहीं है, बल्कि वह एक हरकत और अमल का नाम है। क़ुरआन की एक-एक लाइन उसके हरकत और अमल होने पर गवाह है।

(10) क़ुरआन की दसवीं ख़ूबी यह है कि उसकी तालीम आज अमन की प्यासी दुनिया की प्यास बुझा सकती है। आज के हलाक और तबाह करनेवाले विचारों और नज़रियात से इनसान को छुटकारा और नजात दिला सकती है और दुनिया के उलझे हुए और कठिन मसलों को हल कर सकती है। बशर्ते कि क़ुरआन के फ़िक्रो-अमल के निज़ाम को ग़ालिब होने और काम करने का मौक़ा दिया जाए।

तक़दीर पर ईमान

कायनात में जो कुछ अच्छा या बुरा होता है वह अल्लाह के इल्म और मनसूबे के मुताबिक़ होता है। अल्लाह का मनसूबा और इल्म सच्चा है, लिहाज़ा उसके ख़िलाफ़ नहीं हो सकता। जिस तरह इम्तिहान हॉल में सही और ग़लत दोनों तरह के जवाब लिखनेवालों को सब तरह की सहूलतें मुहय्या कराई जाती हैं उसी तरह दुनिया में सही और ग़लत दोनों तरह के फ़िक्र और अमल अपनानेवालों को आज़ादी दी गई है और यह भी बता दिया गया है कि अल्लाह की वफ़ादारी और उसकी फ़रमाँबरदारी में उसके आख़िरी नबी की तालीम और आख़िरी किताब के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारोगे तो कामयाब होगे और जन्नत की नेमतें दी जाएँगी और अगर उसकी बेवफ़ाई और नाफ़रमानी में ज़िन्दगी बरबाद करोगे तो जहन्नम में झोंक दिए

जाओगे और हमेशा का अज़ाब भुगतना होगा।

मरने के बाद उठाए जाने पर ईमान

मरने के बाद हिसाब-किताब के लिए ज़िन्दा किए जाने पर यक़ीन रखना ज़रूर है। जिस तरह तक़दीर पर ईमान अल्लाह पर ईमान में शामिल है, इसी तरह मर के बाद उठाए जाने पर ईमान, आख़िरत पर ईमान में शामिल है। इसकी अहमिय की वजह से अलग से भी इसका ज़िक्र किया गया है।

नमाज़

इनसान बन्दा है और बन्दगी ही के लिए पैदा किया गया है। उसे अपनी पूरी ज़िन्दगी में अल्लाह की बन्दगी और इबादत करनी है। ज़िन्दगी का एक-एक लम्हा उसकी इताअत में गुज़ारना है। अल्लाह की बन्दगी और ग़ुलामी ही उसकी ज़िन्दगी का मक़सद है। उसे ज़िन्दगी की एक-एक हरकत से अल्लाह की सच्ची इताअत का सुबूत देना है। उसे अपनी जान और माल खपाकर और अपना सब कुछ क़ुरबान करके वफ़ादारी का अमली और सच्चा नमूना पेश करना है। इस ऊँचे और बुलन्द मक़सद के लिए एक बड़े ट्रेनिंग कोर्स की ज़रूरत है जो इनसान को हक़ीक़त में अल्लाह का बन्दा बना दे और उसकी पूरी ज़िन्दगी को बन्दगी में बदल दे। इसी मक़सद को पूरा करने के लिए चार इबादतें, नमाज़, रोज़ा, ज़कात, और हज फ़र्ज़ की गई हैं। इस अहम मक़सद के लिए कुछ ख़ास सिफ़तें ज़रूरी हैं जो नमाज़ के ज़रिए पैदा होती हैं।

(1) इनसान की ज़िन्दगी बन्दगी में तबदील हो जाने के लिए ज़रूरी है कि उसे हर वक़्त याद रहे कि वह अब्द यानी बन्दा है। बन्दगी और ग़ुलामी ही उसकी सच्ची तरक़्क़ी है।

(2) ज़िन्दगी की हर घड़ी में बन्दगी का रवैया अपनाने, इताअत की डगर पर चलने के लिए अपने फ़र्ज़ को पहचानने और अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करने की सिफ़त का पाया जाना भी निहायत ज़रूरी है।

(3) जब तक अल्लाह से मुहब्बत सारी चीज़ों पर ग़ालिब न हो उस वक़्त तक अल्लाह की फ़रमाँबरदारी और उससे वफ़ादारी मुमकिन नहीं।

(4) लेकिन सिर्फ़ मुहब्बत से भी आदमी फ़रमाँबरदार नहीं बन सकता। जब तक ख़ुदा का ख़ौफ़ उसके अन्दर मौजूद न हो वह न तो ग़ुलामी, बन्दगी और इताअत का रास्ता अपना सकता है और न वह उस पर क़ायम रह सकता है।

(5) अल्लाह की बन्दगी में साबित क़दम रहने के लिए ज़रूरी है कि आदमी को अल्लाह के हाज़िर और नाज़िर (मौजूद और देखनेवाला) होने का यक़ीन हो और यह यक़ीन उसके दिल व दिमाग़ पर छाया हुआ हो और हर वक़्त ताज़ा रहे।

(6) अल्लाह बदले के दिन का मालिक है। वह एक दिन ज़र्रे-ज़र्रे और लम्हे-लम्हे का हिसाब लेगा। उसकी पकड़ बड़ी कड़ी है, उसकी गिरफ़्त से कोई निकल नहीं सकता। उसका अज़ाब भयानक और यक़ीनी है। उसके अज़ाब से कोई बचा नहीं

सकता। इन सभी हक़ीक़तों पर जब तक पक्का यक़ीन न हो और यह यक़ीन हर वक़्त ताज़ा न रहे तो आदमी अल्लाह की नाफ़रमानी से नहीं बच सकता और न उसकी फ़रमाँबरदारी पर क़ायम रह सकता है।

(7) अल्लाह के क़ानून से वाक़फ़ियत और जानकारी भी उसकी इताअत के लिए ज़रूरी है। अगर कोई आदमी अल्लाह के अहकाम और उसकी मना की हुई बातों के बारे में जानता ही न हो तो वह किस तरह उसकी नाफ़रमानी से बच सकता है।

(8) दुनिया के सारे कामों की तरह इताअत और बन्दगी के लिए भी ज़रूरी है कि इनसान आपस में एक-दूसरे से सहयोग करें। निजी ख़ूबियों के साथ इजतिमाई ख़ूबियाँ भी अल्लाह की बन्दगी की राह पर चलने के लिए लाज़मी और ज़रूरी हैं और जब मामला यह हो कि सिर्फ़ अल्लाह की इबादत नहीं, बल्कि ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं में उसकी इताअत करनी हो, ज़िन्दगी के तमाम हंगामों में बन्दगी का तरीक़ा अपनाना हो बल्कि ज़िन्दगी का निज़ाम भी क़ायम करना उस राह की लाज़मी शर्त हो तो तआवुन और मेल-मिलाप के बग़ैर कामयाबी एक सपना है जो कभी पूरा नहीं हो सकता।

नमाज़ और अल्लाह की याद

नमाज़ का ज़िक्र क़ुरआन में जितनी बार किया गया है दूसरी किसी इबादत का नहीं किया गया। नमाज़ की सबसे ज़्यादा नुमायाँ ख़ूबी, फ़ायदा और ज़िन्दगी पर पड़नेवाला असर यह है कि वह इनसान को बुरे और अश्लील कामों से बचाती है और गुनाहों की गन्दगी से महफ़ूज़ रखती है। इसका राज़ अल्लाह की याद है।

> "बेशक नमाज़ फ़हश (अश्लील) कामों और बुराइयों से बचाती है और अल्लाह की याद बड़ी चीज़ है।" (क़ुरआन, 29:45)

अगर नमाज़ से ख़ुदा की याद ताज़ा न हो और नमाज़ी वैसा ही ग़ाफ़िल रहे जैसा बेनमाज़ी होता है तो नमाज़ का वह असर क़तई न होगा जो होना चाहिए और वह यक़ीनन उसके फ़ायदे से महरूम रहेगा।

> "फ़लाह (कामयाबी) पा गया वह जिसने पाकीज़गी इख़तियार की और अपने रब को याद किया और नमाज़ पढ़ी।" (क़ुरआन, 87:14-15)

कामयाबी और भलाई का दारोमदार अपने को सँवारने और पाकीज़गी इख़तियार करने पर है। पाकीज़गी अल्लाह की याद से हासिल होती है और अल्लाह को याद करने का सब से अच्छा ज़रिया नमाज़ है। क़ुरआन में कहा गया—

"और मेरी याद के लिए नमाज़ क़ायम करो।" (क़ुरआन, 20:14)

नमाज़ जो अल्लाह की याद का सबसे अच्छा ज़रिया है, उसके पढ़ने का नहीं, बल्कि क़ायम करने का हुक्म दिया गया है, जिससे नमाज़ और अल्लाह की याद की अहमियत का अंदाज़ा करना कुछ मुश्किल नहीं। इससे ज़ाहिर हो गया कि नमाज़ फ़र्ज़ है और अल्लाह की याद के लिए फ़र्ज़ है।

नमाज़ और ज़कात

"नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो।" (क़ुरआन, 73:20)

क़ुरआन की बहुत-सी आयतों में नमाज़ और ज़कात का ज़िक्र साथ-साथ किया गया है। इसमें एक ख़ास इशारा इस तरफ़ भी है कि अल्लाह के हुक़ूक़ अदा किए बिना अल्लाह के बन्दों के हुक़ूक़ अदा होना मुमकिन नहीं। जो बदक़िस्मत इनसान इतना ढीठ हो कि अल्लाह के हुक़ूक़ की परवाह न करे तो वह यक़ीनन बन्दों के हुक़ूक़ भी अदा नहीं करेगा। दूसरी बात इस आयत से यह सामने आती है कि सिर्फ़ नमाज़ या सिर्फ़ अल्लाह की याद काफ़ी नहीं, बल्कि उसके तक़ाज़े पूरे करना और अल्लाह के बन्दों के हुक़ूक़ अदा करना भी ज़रूरी है।

नमाज़ और सब्र

"सब्र और नमाज़ से मदद हासिल करो।" (क़ुरआन, 2:153)

अल्लाह की बन्दगी की राह पर साबित क़दम रहने के लिए ज़रूरी है कि इस राह की तमाम कठिनाइयों को बरदाश्त करने की हिम्मत आदमी में हो, वह इस राह की मुसीबतों को ख़ुशी-ख़ुशी झेलने को तैयार हो। वह अल्लाह की बन्दगी का निज़ाम क़ायम करने की जिद्दोजुहद करे और अपना तन, मन, धन सब कुछ इस राह में झोंक दे और सब कुछ खपा दे। किसी भी मरहले में उसके क़दम हरगिज़ न डगमगाएँ, वह साबित क़दम रहे, और आगे बढ़ने की लगातार और अनथक कोशिश करता रहे। इसी को सब्र कहते हैं जो नमाज़ के ज़रिए पैदा होता है। नमाज़ आदमी की ख़्वाहिशों पर बाँध बाँधती है, उसके नफ़्स को क़ाबू में रखती है, उसे भटकने से बचाती है, और अल्लाह की हुदूद पर क़ायम रखती है। वह नस्बुल-ऐन की लगन पैदा करती है, इनसान में अल्लाह की बन्दगी और इताअत के लिए ईसार (त्याग) और क़ुरबानी का जज़्बा पैदा करती है, मुसीबतें झेलने पर उभारती, और साबित क़दमी पैदा करती है। इन सब ख़ूबियों के मजमूए को सब्र कहते हैं। बन्दगी की राह के लिए सब्र इतना ही ज़रूरी है जितनी ज़रूरी नमाज़ है, और नमाज़ उतनी ही ज़रूरी है जितना सब्र।

नमाज़ और क़ुरबानी

"अपने रब के लिए नमाज़ पढ़ो और क़ुरबानी करो।"

(क़ुरआन, 108:2)

नमाज़ के बाद क़ुरबानी का ज़िक्र बताता है कि नमाज़ भी क़ुरबानी है । ग़ौर किया जाए तो मालूम होगा कि नमाज़ क़ुरबानी ही क़ुरबानी है और साथ ही क़ुरबानी की तालीम भी नमाज़ से हासिल होती है। नमाज़ क़ुरबानी का जज़्बा पैदा करती है। हक़ीक़त में वह नमाज़, नमाज़ नहीं जो क़ुरबानी का जोश और अल्लाह से वफ़ादारी की राह में मर-मिटने का जज़्बा पैदा न करे। नमाज़ में क़ुरआन दुहराया जाता है जिसमें अल्लाह के अहकाम, नवाही (वे काम जिनसे रोका गया है) और उसका क़ानून हमारे सामने आता है, उनकी पाबन्दी करना और उस क़ानून को दुनिया में नाफ़िज़ और लागू करने की कोशिश करना ज़रूरी है और यह सब क़ुरबानी के बग़ैर नहीं हो सकता।

नमाज़ की हिफ़ाज़त

"नमाज़ों की हिफ़ाज़त करो और बीच की नमाज़ की (भी) और अल्लाह की इताअत में क़ियाम करनेवाले हो जाओ। अगर तुम्हें डर है तो पैदल या सवारी पर (जिस हालत में भी हो नमाज़ क़ायम करो) तो जब अमन (शान्ति) मिल जाए तो जिस तरह तुम्हें तालीम दी गई है अल्लाह को याद करो, जिसे तुम बिलकुल नहीं जानते थे।" (क़ुरआन, 2:238-239)

इससे मालूम हुआ कि नमाज़ की हिफ़ाज़त घर पर, सफ़र में, अमन में और ख़ौफ़ में हर हालत में ज़रूरी है।

नमाज़ में कोताही और सुस्ती का बुरा नतीजा

"तबाही और बरबादी है उन नमाज़ियों के लिए जो अपनी नमाज़ों से ग़ाफ़िल हैं।" (क़ुरआन, 107:4-5)

यहाँ नमाज़ के इनकार और उसके छोड़ने का ज़िक्र नहीं है, बल्कि ज़िक्र नमाज़ पढ़नेवालों ही का है। जो अपनी नमाज़ों में सुस्ती करते हैं वे बदक़िस्मत नमाज़ी हैं। यह ग़फ़लत, सुस्ती और भूल क्या है? क़ुरआन ने ख़ुद ही इसको बता दिया है—

"वे लोग जो दिखावा करते हैं।" (क़ुरआन, 107:6)

जिनकी नीयत ख़ालिस न हो, जो दिखावा करते हैं, नुमाइश और शो जिनका तरीक़ा हो, हक़ीक़त में वही सुस्ती और भूल करनेवाले हैं।

यह दिखावा कौन लोग करते हैं? उनकी पहचान क्या है? इसको भी क़ुरआन ने बता दिया है।

"और वे मामूली-मामूली चीज़ तक देने से मना कर देते हैं।"
(क़ुरआन, 107:7)

यानी वे नमाज़ पढ़ते हैं और उसमें क़ुरआन पढ़ते हैं, लेकिन उसके मामूली तक़ाज़ों को भी पूरा नहीं करते। ऐसे ही लोग दिखावा करते हैं और तबाही और बरबादी ऐसे ही नमाज़ियों के लिए है।

नमाज़ के लिए दुआ

हज़रत इबराहीम (अलै०) की दुआ क़ुरआन में इस तरह है—

"ऐ मेरे रब! मुझे और मेरी औलाद को नमाज़ क़ायम करनेवाला बना दे। हमारे रब! हमारी दुआ क़बूल कर ले।" (क़ुरआन, 14:40)

एक सच्चा मुस्लिम अपने रब से अपने लिए और अपने बच्चों के लिए नमाज़ पर क़ायम रहने की भीख माँगता है, परन्तु एक दुनियादार अल्लाह से दुनिया ही माँगता है।

नबी (सल्ल०) की हदीसें भी नमाज़ की अहमियत, फ़ज़ीलत और आदाब व तरीक़े से भरी हुई हैं। कुछ हदीसें यहाँ दी जा रही हैं—

नमाज़ दीन का सुतून है

"दीन की बुनियाद अल्लाह की इताअत है, उसका सुतून नमाज़ है और उसकी चोटी अल्लाह की राह में जिहाद है।" (हदीस)

नमाज़ फ़र्ज़ है

हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) पर मेराज की रात में पचास नमाज़ें फ़र्ज़ की गईं, फिर घटा कर पाँच कर दी गईं और यह आवाज़ आई—"ऐ मुहम्मद! हमारे यहाँ बात नहीं बदला करती, इन पाँच में ही पचास का अज्र मिलेगा।"

क़ियामत में सबसे पहला सवाल

"बन्दे से सबसे पहले नमाज़ के बारे में पूछा जाएगा।" (हदीस)

नमाज़ ठीक हो तो ज़िन्दगी सुधर जाए

"अगर नमाज़ ठीक हो जाए तो उसके सारे आमाल सुधर जाएँ और अगर नमाज़ दुरुस्त न रहे तो ज़िन्दगी के सारे आमाल ख़राब हो जाएँ।"

नमाज़ की ताकीद

"नबी (सल्ल०) ज़िन्दगी की आख़िरी साँसें लेते हुए कहने लगे, "नमाज़, नमाज़ और तुम्हारे ममलूक (अर्थात् ग़ुलाम और बाँदियाँ)।"

यानी नमाज़ों की पाबन्दी करना और ग़ुलामों और मातहतों के हुक़ूक़ का ध्यान रखना।

बरबाद होनेवाली आख़िरी चीज़

"इस्लाम की कड़ी-कड़ी अलग-अलग हो जाएगी। तो जब भी कोई कड़ी टूटेगी तो उससे मिली हुई कड़ी लोग थाम लेंगे। पहली चीज़ जो टूटेगी वह हुक्म होगा और उनमें की आख़िरी कड़ी नमाज़ होगी।" (हदीस)

यानी गिरावट और पतन की सूरत में अल्लाह के हुक्मों को लागू करना सबसे पहले ख़त्म होगा और यहाँ तक कि लोग नमाज़ तक से ग़ाफ़िल हो जाएँगे और जब कोई इनसान नमाज़ से भी ग़ाफ़िल हो जाएगा तो उसकी ज़िन्दगी में दीन बाक़ी नहीं रहेगा।

सज़ा की धमकी

इस बात को तमाम मुसलमान मानते हैं कि नमाज़ के फ़र्ज़ होने का इनकार कुफ़्र है और ऐसा इनसान इस्लाम से ख़ारिज समझा जाएगा। जो लोग नमाज़ को फ़र्ज़ मानने के बावजूद बिना किसी मजबूरी के नमाज़ छोड़ते हैं उनके लिए हदीसों में बड़ी सख़्त सज़ा की धमकी दी गई है।

नमाज़ छोड़ना कुफ़्र है

"इनसान और कुफ़्र के बीच फ़र्क़ करनेवाली चीज़ नमाज़ है।" (हदीस)

यानी नमाज़ छोड़ते ही इनसान कुफ़्र के जाल में फंस जाता है।

"हमारे और उनके बीच समझौता नमाज़ का है, जिसने नमाज़ छोड़ी उसने कुफ़्र किया यानी समझौता तोड़ दिया।" (हदीस)

नमाज़ में सुस्ती का नतीजा

"जिसने नमाज़ की हिफ़ाज़त की तो नमाज़ उसके लिए क़ियामत में नूर, दलील और नजात होगी और जिसने नमाज़ की हिफ़ाज़त नहीं की तो नमाज़ उसके लिए नूर, दलील और नजात न होगी और उसका अंजाम क़ारून, फ़िरऔन, हामान और उबई बिन ख़लफ़ (जैसे हक़ के दुश्मनों)

के साथ होगा।" (हदीस)

सहाबा नमाज़ छोड़ने को कुफ़्र समझते थे

"नबी (सल्ल०) के सहाबा (रज़ि०) नमाज़ के अलावा किसी अमल के छोड़ने को कुफ़्र नहीं समझते थे।"

हर मुसलमान, आक़िल, बालिग़ मर्द और औरत पर नमाज़ फ़र्ज़ है

तीन लोगों से क़लम उठा लिया गया (यानी उनकी कोई पकड़ नहीं):

(1) सोनेवाले से यहाँ तक कि वह जाग जाए,

(2) बच्चे से यहाँ तक कि वह बालिग़ हो जाए,

(3) पागल या दीवाने से यहाँ तक कि उसका पागलपन जाता रहे।

बच्चों को नमाज़ सिखाना ज़रूरी है

"अपनी औलाद को नमाज़ का हुक्म दो जबकि वे सात वर्ष के हों, जब वे दस वर्ष के हो जाएँ तो नमाज़ न पढ़ने पर उन्हें सज़ा दो और उनके बिस्तर भी अलग कर दो।" (हदीस)

नमाज़ कैसी हो

नमाज़ में कुछ फ़राइज़, कुछ सुन्नतें और कुछ वाजिबात हैं। उनकी तफ़सील फ़िक़्ह (इस्लामी क़ानून) की किताबों में है। नीचे उन बातों का ज़िक्र किया जा रहा है जिनका ताल्लुक़ नमाज़ की रूह और उसके मक़सद से है।

(1) ख़ुशू-ख़ुज़ू (दिल का अल्लाह की ओर झुकाव) तथा नमाज़

दिल की नरमी और उसका झुकाव नमाज़ की रूह है। जब तक आदमी पूरी तरह आजिज़ी का नमूना नहीं बन जाता तब तक वह नमाज़ का हक़ अदा नहीं कर सकता और न वह नमाज़ से पूरा-पूरा फ़ायदा उठा सकता है। हक़ अदा करना और पूरा फ़ायदा उठाना तो दूर रहा, अगर इनसान दिल की आजिज़ी से महरूम है तो नमाज़ ग़म, बोझ और मुसीबत बन जाती है, जिसे वह जैसे-तैसे करके सिर से बोझ उतार कर फेंकने की कोशिश करता है। क़ुरआन में है—

"नमाज़ उन लोगों के लिए बोझ है जिनके दिल झुके हुए नहीं हैं।"

जिनके दिल झुके हुए हैं वे खुशकिस्मत हैं, नमाज़ उनके लिए बोझ नहीं है, उनके लिए तो नमाज़ आसान है, वे उससे पूरा फ़ायदा उठाते हैं और खुशी-खुशी

ये फ़र्ज़ अंजाम देते हैं।

(2) अल्लाह के हाज़िर और नाज़िर होने का तसव्वुर

दूसरी चीज़ जो इस सिलसिले में ज़रूरी है और जो नमाज़ में ज़िन्दगी पैदा करती और उसे असरदार बनाती है वह अल्लाह के हाज़िर और नाज़िर होने का ध्यान है। जब तक अल्लाह तआला की इस सिफ़त का ध्यान न होगा सही मायनों में नमाज़, नमाज़ न होगी। अल्लाह की सिफ़ात की याद से अल्लाह का इल्म भी हासिल होता है और दिल में झुकाव भी पैदा होता है। मशहूर कहावत है—

'जिसने अपने को पहचान लिया, उसने अपने रब को पहचान लिया।' अल्लाह हमें देख रहा है— इस ख़्याल के साथ नमाज़ पढ़नी चाहिए। नबी(सल्ल०) नमाज़ के शुरू करते वक़्त जो दुआएँ पढ़ते थे उनमें से हर एक के ज़रिए यह अहसास ताज़ा होता है कि अल्लाह हमें देख रहा है।

(3) दिल की यकसूई

तीसरी ज़रूरी चीज़ दिल की यकसूई है। नमाज़ में इनसान अपने सारे ताल्लुक़ात और दिलचस्पियों को छोड़कर कुछ देर के लिए अपने रब से बातें और दुआ करता है। इस मौक़े पर वह पूरे शऊर के साथ यकसू हो जाए और अपना ध्यान अपने रब की ओर रखे। यही नमाज़ हक़ीक़त में नमाज़ होगी और अपना असर दिखाएगी। नमाज़ शुरू करने की जो दुआ है उनपर ग़ौर करने से यह बात अच्छी तरह समझ में आती है।

(4) पूरी ज़िन्दगी में यकसूई का इरादा

इस सिलसिले में एक ज़रूरी बात यह है कि यह यकसूई और हर तरफ़ से कटकर अल्लाह की तरफ़ अपना रुख़ करने की बात वक़्ती और अस्थायी न हो, बल्कि नमाज़ के अन्दर कुछ लम्हों की यकसूई इस इरादे के साथ हो कि मैं अपनी पूरी ज़िन्दगी और उसके हर पहलू को अल्लाह के रंग में रंगूँगा, यहाँ तक कि अपना जीना और मरना दोनों अल्लाह के लिए हो जाएँ, नमाज़ शुरू करने की दुआ पर ग़ौर कीजिए—

> "मैंने हर तरफ़ से कटकर अपना रुख़ उसकी ओर कर लिया है जिसने आसमानों और ज़मीनों को पैदा किया है और मैं मुशरिकों में से नहीं हूँ।" (क़ुरआन, 6:79)
>
> "मेरी नमाज़ और मेरी क़ुरबानी, मेरा जीना और मेरा मरना अल्लाह के लिए है जो सारी कायनात का रब है। उसका कोई शरीक नहीं, इसी

का मुझे हुक्म हुआ है, और सबसे पहले फ़रमाबरदारों में से मैं हूँ।"

(क़ुरआन, 6:162-163)

(5) ज़िन्दगी के हर हिस्से में इताअत का अहद

ऊपर की दुआ से एक और बात सामने आती है। नमाज़ी अपने अक़ीदे को ताज़ा करे, उसे शिर्क की हर गन्दगी से पाक रखे, और इसका पक्का इक़रार करे कि शिर्क की हर गन्दगी से वह अपने अमल को पाक रखेगा और वह नमाज़ में दाख़िल होने से पहले ज़िन्दगी के हर हिस्से (विभाग) में अल्लाह की फ़रमाँबरदारी का अहद करे।

(6) नीयत का इख़लास

नीयत का ख़ालिस होना बहुत ज़रूरी है। नमाज़ी के सामने अपने रब की ख़ुशनूदी और रज़ा हो, इसके अलावा और कोई मक़सद नमाज़ पढ़ने का न हो।

(7) मसनून तरीक़ा

अक़ीदा और नीयत ठीक होने के साथ नमाज़ का तरीक़ा और उसकी ज़ाहिरी शक्ल और रख-रखाव जहाँ तक मुमकिन हो, नबी (सल्ल०) के नमूने पर हो, वरना नमाज़ क़बूल नहीं होगी और सारा किया-कराया बरबाद हो जाएगा।

(8) शऊरी नमाज़

नमाज़ शऊरी और बामक़सद होनी चाहिए। नमाज़ की एक-एक हालत शऊरी हो। नमाज़ में पढ़ी जानेवाली हर दुआ और आयत का मतलब सामने हो। उठना, बैठना, रुकू (झुकना), सजदा, वग़ैरह ठहर-ठहर कर इत्मीनान से अदा किया जाए, यह वाजिब है। क़ुरआन की तिलावत ठहर-ठहर कर की जाए, ताकि एक-एक आयत का मतलब समझ में आ सके। इस तरह जो नमाज़ पढ़ी जाएगी वह इनशाअल्लाह दुनिया और आख़िरत दोनों में कामयाबियों का सबब बनेगी और इसके ज़रिए से हमारा रब ख़ुश होगा।

(9) नमाज़ का एहतिमाम

नमाज़ का इन्तिज़ार और उसका एहतिमाम इस सिलसिले की एक अहम कड़ी है । नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "जिसने अपने घर में वुज़ू किया फिर अल्लाह के घरों में से किसी घर (मसजिद) में गया ताकि अल्लाह के फ़र्ज़ों में से कोई फ़र्ज़ अदा करे तो उसके हर दो क़दमों में से एक क़दम किसी गुनाह को मिटा देगा और दूसरा क़दम दर्जा बुलन्द करेगा।" (हदीस : मुसलिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क्या मैं तुम्हें वे काम न बताऊँ जिनसे अल्लाह छोटे गुनाहों को मिटा देता है और दर्जा ऊँचा करता है?" सहाबा ने कहा, "क्यों नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल! ज़रूर बताइए।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नागवार होते हुए भी पूरा-पूरा वुज़ू करना, ज़्यादा से ज़्यादा मसजिद जाना और एक नमाज़ के बाद दूसरी नमाज़ का इन्तिज़ार करना।" (हदीस : मुसलिम)

नमाज़ के इन्तिज़ार और उसके एहतिमाम की बड़ी अहमियत और फ़ज़ीलत है। जितनी बेचैनी के साथ एक नमाज़ के बाद दूसरी नमाज़ का इन्तिज़ार किया जाएगा उतना ही अल्लाह और उसकी इबादत से लगाव होगा और जितनी इसकी तैयारी होगी उतना ही इस बात का सबूत सामने आएगा कि दिल में अल्लाह और उसकी इबादत की अहमियत है।

रोज़ा

इनसान इबादत के लिए पैदा किया गया है—उस इबादत के लिए जो पूरी ज़िन्दगी पर हावी है और जिसके दायरे में ज़िन्दगी के तमाम पहलू आ जाते हैं। मुसलमान इस फ़र्ज़ को एक वफ़ादार ग़ुलाम और ताबेदार सिपाही की हैसियत से अच्छी तरह पूरा करता है। इस वफ़ादारी और ताबेदारी के लिए जो ताक़त चाहिए वह 'रोज़ा' से हासिल होती है।

अलग-अलग इनफ़िरादी हैसियत में ज़िन्दगी गुज़ारना और बिखरे हुए ज़र्रों की तरह पड़े रहना नासमझी और नादानी है और इनसानियत की तौहीन है। लिहाज़ा मुसलमान इनफ़िरादी तरीक़े से ज़िन्दगी गुज़ारने को ख़ुदकुशी के बराबर समझता है। वह जानता है कि सीसा पिलाई हुई दीवार बने बग़ैर उस भारी ज़िम्मेदारी को पूरा नहीं किया जा सकता जो मुस्लिम उम्मत पर डाली गई है। अल्लाह के कलिमे को बुलन्द करने, दीन को क़ायम करने, नेकियों का हुक्म देने और बुराइयों को रोकने की मुहिम को पूरा करने के लिए या दूसरे लफ़्ज़ों में इनसानी ज़िन्दगी के असल मक़सद 'अल्लाह की इबादत' को पूरा करने के लिए जिन इनफ़िरादी और इजतिमाई ख़ूबियों की ज़रूरत है, उनको परवान चढ़ाने में रोज़ा बहुत कामयाब साबित होता है।

इस दुनिया में हर काम के लिए और ख़ास तौर से इजतिमाई कामों के लिए दो तरह के साधनों की ज़रूरत होती है। वे साधन जिनसे आगे बढ़ने में मदद मिलती है, दूसरे वे साधन और उपाय जिनसे बचाव और हिफ़ाज़त की जाती है। मुस्लिम उम्मत का हर व्यक्ति अल्लाह का सिपाही है। उसे आगे बढ़ने के लिए भी माद्दी, और अख़लाक़ी व रूहानी दोनों क़िस्म के हथियारों की ज़रूरत है और बचाव के लिए भी। इस्लाम ने तौहीद की शक्ल में एक ऐसा हथियार दिया है जिसके आगे इलहाद (नास्तिकता), कुफ़्र, शिर्क, माद्दापरस्ती, और उसकी बुनियाद पर बनी तमाम तहरीकें और नज़रिए टिक नहीं सकते। इसी तरह जिन्नों और इनसानों में शैतानों के मुक़ाबले में बचाव के लिए भी इस्लाम ने बेहतरीन फ़िक्री, अख़लाक़ी और रूहानी हथियार अता किए हैं। हथियारों के इस ढेर में 'रोज़ा' को एक अहम मुक़ाम हासिल है। इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि रोज़ा अपनी मिसाल आप है। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"रोज़े ढाल हैं।" (हदीस)

जब रोज़े की यह अहमियत है तो उसके आदाब का लिहाज़ रखना भी ज़रूरी है। जो ये हैं—

(1) रमज़ान की तैयारी पहले से करनी चाहिए। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि—

"अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब रमज़ान का महीना आता है तो आसमान के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं (यानी अल्लाह की रहमतों की बारिश होने लगती है)।" (हदीस)

एक दूसरीं हदीस में है कि—

"जन्नत के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं (यानी बन्दों को भलाई और नेकियों की तौफ़ीक़ मिलती है जिससे वे जन्नत के हक़दार बन जाते हैं) और जहन्नम के दरवाज़े बन्द कर दिए जाते हैं (यानी लोगों को अपनी नफ़सानी ख़्वाहिशात पर क़ाबू पाने की तौफ़ीक़ मिलती है और वे इस तरह उन गुनाहों से महफ़ूज़ रहते हैं जिनकी वजह से इनसान जहन्नम में जाता है) और शैतान को ज़ंजीरों में जकड़ दिया जाता है। (यानी ईमानवालों पर अल्लाह की ख़ुसूसी रहमत का होना और मोमिनों को भलाइयों की तौफ़ीक़ मिलना, उनका अपनी इच्छाओं पर क़ाबू रखना, ये तीनों चीज़ें मिलकर शैतान को बेबस कर देती हैं मानो ज़ंजीरों में बाँध दिया गया हो)" (हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

यह हदीस हम से मुतालबा कर रही है कि हम पहले ही से रमज़ान की तैयारी शुरू कर दें ताकि अल्लाह की रहमत जब नाज़िल हो तो हम भी उसके हक़दार हों। अगर हम ईमानवाले हैं और हमारा ईमान सिर्फ़ दिखावा नहीं है तो यक़ीनन रमज़ान के महीने में उतरनेवाली अल्लाह की रहमतें हमारे हिस्से में भी आएँगी। अगर हमने पहले से ही रोज़ा रखने और रमज़ान के महीने से पूरी तरह फ़ायदा उठाने का पक्का इरादा नहीं किया है और अगर पहले ही से हमने अपने को नेकियों का आदी नहीं बनाया है तो रमज़ान में भी नेकियों की तौफ़ीक़ नहीं मिलेगी। अगर हम पहले ही से गुनाहों से बचने का इंतिज़ाम नहीं करेंगे और नफ़सानी ख़्वाहिशों पर क़ाबू रखने की बात पहले ही से नहीं सोचेंगे तो रमज़ान में भी गुनाहों से बचने की तौफ़ीक़ हमें कम होगी, क्योंकि यकायक ख़्वाहिशात पर क़ाबू पा लेना कोई आसान काम नहीं है। नबी (सल्ल०) का अमल भी इस पर गवाह है। आप (सल्ल०) रमज़ान के अलावा सबसे ज़्यादा रोज़े शाबान के महीने में रखते थे। इस महीने में ज़्यादा रोज़े रखने की एक बड़ी वजह रमज़ान की तैयारी भी है। चूँकि इस्लाम हर मामले में बीच का रास्ता पसन्द करता है, इसलिए नबी (सल्ल०) ने शाबान के आधे महीने के बाद या रमज़ान से एक दो दिन पहले रोज़ा रखने से मना किया है। (हुज्जतुल्लाह)

(2) 'जैसी नीयत वैसी बरकत' हमारे यहाँ यह एक मशहूर कहावत है। यह एक ठोस हक़ीक़त भी है जिसकी ताईद अक़्ल भी करती है और क़ुरआन व सुन्नत भी इसकी ताईद करते हैं। नबी (सल्ल०) की एक मशहूर हदीस है—

"आमाल का दारोमदार नीयतों पर है।" (हदीस)

अल्लाह की नज़र में किसी काम के मक़बूल होने के लिए हालाँकि अक़ीदे का ठीक होना और आमाल की ज़ाहिरी शक्लो सूरत और तरीक़े का शरीअत के मुताबिक़ होना भी ज़रूरी है, लेकिन नीयत की अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता। लिहाज़ा रोज़ा भी नीयत की दुरुस्ती के बग़ैर सही नहीं होगा। आप ख़ुद सोचें कि रोज़ों और फ़ाक़ों में नीयत के सिवाय और क्या फ़र्क़ है?

(3) एक मोमिन की पूरी ज़िन्दगी और ज़िन्दगी का हर लम्हा ईमान के तक़ाज़ों से भरा रहता है और वह हर वक़्त अपने आमाल की जाँच करता रहता है। ईमान का शऊर और उसके तक़ाज़ों का एहसास उसे अमली मोमिन बना देता है। ईमान में इस शऊर और तक़ाज़ों को जिस चीज़ से ख़ुराक मिलती है वह 'एहतिसाब' यानी आमाल की जाँच है। मोमिन हर काम से पहले यह देखता है कि यह उसके ईमान के ख़िलाफ़ तो नहीं है। वह क़दम ही उसी वक़्त उठाता है जब वह ईमान से इजाज़त ले लेता है। इबादतों में और ख़ासतौर से नमाज़ और रोज़े की हालत में तो ईमान का शऊर और उसके तक़ाज़ों का एहसास इतना बढ़ जाता है कि वह अपने आमाल पर कड़ी नज़र रखने लगता है। बदक़िस्मत है वह इनसान जो सुबह से शाम तक भूखा-प्यासा तो रहे, लेकिन अपने ईमान और आमाल की जाँच की फ़िक्र न करे। रोज़ा ही नहीं बल्कि उसे तो रोज़े के हर भाग में ईमान और आमाल की जाँच करते रहना चाहिए। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "जिसने ईमान और सवाब की नीयत के साथ रोज़ा रखा उसके सभी पिछले गुनाह माफ़ कर दिए गए। और जिसने तरावीह की नमाज़ ईमान और सवाब की नीयत से पढ़ी उसके पिछले गुनाह माफ़ कर दिए गए और जिसने 'शबेक़द्र' ईमान और सवाब की नीयत से इबादत में बिताई, उसके सभी पिछले गुनाह माफ़ कर दिए गए।" (हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

(4) ज़िन्दगी के हर लम्हे में फ़ज़ूल कामों, बेहूदा बातों और बेफ़ायदा दिलचस्पियों से बचना मोमिन के ईमान का तक़ाज़ा है, और रोज़े की हालत में तो इसका ख़ास तौर से ध्यान रखना चाहिए। सिर्फ़ अपने ही को बचाने की फ़िक्र न करे, बल्कि यदि कोई दूसरा उसे बेहूदा बकवास, या शराफ़त और इनसानियत को बट्टा लगानेवाले कामों में उलझाना और फँसाना चाहे तब भी अपने को उस गन्दगी से बचा कर

अलग हो जाना चाहिए। अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "जब तुम में से किसी का रोज़ा हो तो न शहवत (वासना) भरे अलफ़ाज़ कहे और न बुरी बात, अगर कोई तुम से गाली-गलौज करे या झगड़ा करे तो यह कहकर अलग हो जाओ कि मैं रोज़े से हूँ।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

(5) मुसलमान अपनी पूरी ज़िन्दगी भलाई की चाह में गुज़ारता है और यह चाह और तलब सिर्फ़ ख़्वाहिश की हद तक नहीं होती बल्कि हक़ीक़त में वह ख़ैर और भलाई की तलाश में रहता है और वह बुराई से इस तरह भागता है जिस तरह आग की लपटों से भागा जाता है। रमज़ान के महीने में तो वह भलाई का पूरा नमूना बन जाता है, उसका हर लम्हा अज्र और सवाब की तलब में गुज़रता है और गुनाह के तसव्वुर से भी वह काँप उठता है, क्योंकि वह जानता है कि नबी (सल्ल०) ने इस बात की ख़बर दी है कि—

> "रमज़ान की हर रात में ग़ैब से आवाज़ दी जाती है, ऐ भलाई के चाहनेवाले! ध्यान दे (अतः मोमिन अपने रब की तरफ़ रुख़ कर लेता है) ऐ बुराई चाहनेवाले! बस कर, रुक जा! (अतः मोमिन गुनाहों से और ज़्यादा होशियार हो जाता है, हर लम्हा अपने कामों की जाँच करता और हर क़दम फूँक-फूँक कर उठाता है)" (हदीस : तिरमिज़ी)

(6) मोमिन ऐसा अक़्लमन्द, होशियार और सूझ-बूझवाला होता है के अपनी ज़िन्दगी के लम्हात को बरबाद नहीं करता। वह अपने एक-एक मिनट और सेकण्ड को महफ़ूज़ रखता है और फ़ायदामन्द कामों में ख़र्च करता है, वह किसी भी अच्छे मौक़े को हाथ से जाने नहीं देता। रमज़ान के दिन साल में सिर्फ़ एक बार आते हैं और गिनती के इन तीस दिनों में भी 'क़द्र' की रात सिर्फ़ एक होती है, वह इस मौक़े को ग़नीमत समझता है, और इस मुबारक महीने के रात और दिन, सुबह और शाम और ख़ास तौर से क़द्र की रात, सब ही से ख़ूब फ़ायदा उठाता है। नमाज़, रोज़ा, क़ुरआन की तिलावत, सदक़ात वग़ैरह मुख़तलिफ़ तरीक़ों से पूरा फ़ायदा उठाने की मुसलसल दिलो-जान से और ख़ुलूस के साथ कोशिश करता है, क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का यह फ़रमान उसके सामने होता है कि—

> "अल्लाह के लिए एक रात है, जो हज़ार महीनों से बेहतर है। उस रात की भलाई से जो महरूम रहा तो वह हक़ीक़त में महरूम रहा।"
>
> (हदीसः मुसनद अहमद)

(7) मोमिन की ज़िन्दगी बामक़सद और शऊरी होती है, लिहाज़ा ज़िन्दगी में वह जो काम भी करता है उसका मक़सद मालूम और तयशुदा होता है। वह बेसमझे-बूझे कोई काम नहीं करता। किसी काम के शुरू करने से पहले उसके मक़सद पर नज़र रखता है और ठोंक-बजाकर देख लेता है कि यह काम करने का है या नहीं? अपने वक़्त, अपनी सलाहियतों और ज़राए-वसाइल को वह यूँ ही खपाना शुरू नहीं कर देता है, बल्किं पूरा इत्मीनान कर लेता है कि इस काम से किन फ़ायदों और अच्छे नतीजों की उम्मीद है। जब उसको अच्छा और इत्मीनानबख़्श नतीजा निकलता हुआ नज़र आता है तभी वह किसी काम में हाथ डालता है, अतः वह रोज़ा भी यूँ ही रखना शुरू नहीं कर देता, बल्कि शऊरी ईमान के तक़ाज़े को सामने रखकर उसके मक़सद, फ़ायदे और ज़िन्दगी पर पड़नेवाले असरात को पहले देखता है।

(8) हर 'तागूत' (असत्य ताक़तें जो अल्लाह के मुक़ाबले में अपनी बन्दगी कराती हैं) और 'तागूत' का हर बन्दा मोमिन का दुश्मन और मुख़ालिफ़ है; और मोमिन की उससे हमेशा की कशमकश है, जिसमें सब्र और नफ़्स पर क़ाबू (आत्म-संयम) रखने की सिफ़ात रोज़े के ज़रिए पैदा होतीं और बढ़ती हैं। बातिन यानी मन के अन्दर के दुश्मन से अगर मैदान जीत लिया तो समाज, मआशी-निज़ाम (अर्थ-व्यवस्था), सियासत और हुकूमत के मैदानों में भी बातिल और तागूती ताक़तों से मैदान जीत लेना मुमकिन हो सकेगा।

(9) मोमिन अकेला नहीं रहता, बल्कि वह मोमिनों की एक टीम के साथ रहता है जो दुनिया की दूसरी टीमों से निराली होती है। इस टीम के साथियों में एक दूसरे की ग़मख़्वारी, और हमदर्दी जितनी ज़्यादा होगी उतने ही वे अपने मक़सद, अल्लाह के कलिमे को ऊँचा करने में जल्द कामयाब होंगे। ये हमदर्दी और सहानुभूति के जज़बात रोज़े के ज़रिए अच्छी तरह पैदा होते हैं। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"रमज़ान सब्र और हमदर्दी का महीना है।" (हदीस : बैहक़ी)

(10) मोमिन चूँकि रब का सच्चा और वफ़ादार बन्दा, और पैग़म्बर (सल्ल०) का सच्चा पैरो और ताबेदार होता है, अतः वह अपना या अपने लोगों का ही भला चाहनेवाला और हमदर्द नहीं होता बल्कि सारी इनसानियत और सारी कायनात का हमदर्द और भला चाहनेवाला होता है, यहाँ तक कि वह अपने दुश्मनों पर भी रहम करता है। वह रोज़ों के ज़रिए इस तरह के ऊँचे किरदार और ऊँची सिफ़तों को अपने अन्दर पैदा करता और बढ़ाता है और हर साल रमज़ान में इसकी ट्रेनिंग लेता है। उसके सामने नबी (सल्ल०) का नमूना होता है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) कहते हैं कि जब रमज़ान का महीना शुरू होता तो "नबी (सल्ल०)

हर क़ैदी (काफ़िर और दुश्मन क़ैदी) को रिहा कर देते और हर माँगनेवाले को कुछ न कुछ ज़रूर देते।" (हदीस : बैहक़ी)

(11) ज़िन्दगी के कोलाहल से हालाँकि इनकार नहीं, लेकिन ख़लवत यानी तनहाई का लुत्फ़ भी कुछ कम नहीं होता। इसकी लज़्ज़त से जो आशना हो जाता है उसकी रूहानी तरक़्क़ी देखने के क़ाबिल होती है। जो इस हसीन वादी से गुज़र जाता है उसका इश्क़ क़ाबिले-दीद होता है। यह नमाज़ क्या है? एक तरह की ख़लवत ही तो है, बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि नमाज़ जैसी ख़लवत कोई दूसरी नहीं है— एक निराली ख़लवत, ऐसी ख़लवत जिस पर हज़ारों जलवतें (कोलाहल) क़ुरबान हो जाएँ। ख़लवत में आदमी को सुकून और बेचैनी के उतार-चढ़ाव से होकर गुज़रना पड़ता है। ख़लवत में आदमी अपनी रूहानियत और इनसानियत के जज़्बे को समाज के लिए परवान चढ़ाता है। आदमी का ज़ेहन बनाने में जहाँ उसका माहौल और सोसाइटी मददगार या रोक बनती है वहीं उसके ज़ेहन और किरदार की मज़बूती के लिए किसी हद तक ख़लवत की भी ज़रूरत है। इस्लाम ने एक तरफ़ इजतिमाई और समाजी तरीक़े पर बड़ा ज़ोर दिया है, और इबादतों तक को मिल-जुलकर अदा करने का हुक्म दिया है। वहीं दूसरी तरफ़ वह ख़लवत पर भी ज़ोर देता है। नफ़्ल इबादतों को छिपकर अदा करना ही बेहतर समझता है। 'एतिकाफ़' (मस्जिद में ही एक निश्चित वक़्त अल्लाह की याद में बिताना) ख़लवत की एक शक्ल है। नबी (सल्ल०) रमज़ान के आख़िरी दस दिनों में 'एतिकाफ़' किया करते थे। हमको भी चाहिए कि इस ओर ध्यान दें और 'एतिकाफ़' की सुन्नत से फ़ायदा उठाएँ।

(12) रमज़ान के आख़िरी दस दिनों की 'ताक़' (21-23-25-27-29वीं) रातों में से कोई एक रात 'शबेक़द्र' होती है, जो हज़ार महीनों से भी बेहतर है। यानी जिसमें इबादत का सवाब हज़ार महीनों की इबादतों से भी बेहतर और अफ़ज़ल है। अल्लाह हमें उन ताक़ रातों में जागकर इबादत करने की तौफ़ीक़ दे। क़द्र की रात में यह दुआ करनी चाहिए—

'अल्लाहुम्म इन्न-क 'अफ़ुव्वुन तुहिब्बुल 'अफ़-व-फ़ा 'अफ़ु अन्नी।'

"ऐ अल्लाह! तू बहुत माफ़ करनेवाला और दरगुज़र करनेवाला है और माफ़ करने को पसन्द करता है, मुझे भी माफ़ कर दे।"

मोमिन की सबसे बड़ी तमन्ना, आरज़ू और अरमान यह होता है कि उससे उसका मालिक राज़ी हो जाए, किसी तरह वह अल्लाह को राज़ी कर ले। अतः 'शबेक़द्र' का बेहतरीन मौक़ा हाथ आते ही अपने दिल की गहराइयों से पुकार उठता है— "ऐ मेरे रब! मुझे माफ़ कर दे और अपनी रहमत के दामन में छिपा ले।"

(13) इनसान एक अजीब और पुरअसरार (रहस्यमयी) वुजूद है। उसके जज़्बात, उसकी ज़ेहनी कैफ़ियत और दिली एहसासों को पढ़ना बड़ा कठिन और मुश्किल काम है, परन्तु इस्लाम उसे एक ऐसी बुनियाद दे देता है जो उसके जज़्बात, कैफ़ियात और एहसासात ही को नहीं, बल्कि उसकी हर क़ुव्वत और सलाहियत और उसके पूरे वजूद को एक मुनज़्ज़म और अनुशासित इकाई बना देती है, जिसके ज़रिए वह अपने आपको और कायनात को ख़ुद भी पढ़ सकता है और दूसरे भी उसे पढ़ सकते हैं, वह बुनियाद 'तौहीद' है। अल्लाह ने इनसान को तौहीद का सबक़ पढ़ाकर उस पर सबसे बड़ा एहसान किया है। इसी एहसान के शुक्रिया में आप एक सच्चे मुसलमान को अल्लाह की याद और उसकी तारीफ़ करते हुए पाएँगे। अतः जहाँ वह रोज़े की शुरुआत नेक इरादे के साथ करता है, वहीं उसके पूरा होते समय इफ़्तार करते वक़्त यह दुआ कहता है—

अल्लाहुम-म ल-क सुम्तु व अला रिज़्क़ि-क अफ़्तरतु।

"ऐ अल्लाह! मैंने तेरे ही लिए रोज़ा रखा और तेरी ही दी हुई रोज़ी से इफ़्तार किया।"

इन लफ़्ज़ों के ज़रिए रोज़ेदार "इस नेक अमल" और 'पाक रोज़ी' की नेमतों का शुक्र अदा करता है फिर इफ़्तार के बाद वह कहता है—

ज़-ह-बज़्ज़मउ वब तल्लतिल् ऊरूकु व स-ब-तल अजरु इन शा-अल्लाहु तआला।

"प्यास की बेचैनी दूर हो गई, हलक़ की रगें तर हो गईं, और इनशाअल्लाह इसका अज्र भी ज़रूर मिलेगा।"

ज़कात

धन, दौलत में से अल्लाह के उस हक़ का नाम ज़कात है जो मुसलमान फ़क़ीरों और मिसकीनों वग़ैरह के लिए निकालता है। 'ज़कात' लफ़्ज़ का मतलब बढ़ोत्तरी, बरकत और तहारत (पाकी) है। ज़कात से चूंकि माल में बरकत होती है और नफ़्स का तज़किया होता है इसलिए इसका नाम ज़कात है।

ज़कात इस्लाम का रुक्न (सुतून) है। इसका ज़िक्र क़ुरआन में 82 जगहों पर नमाज़ के साथ आया है। अल्लाह की किताब, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सुन्नत और उम्मत के 'इजमाअ' (सर्वसम्मति) तीनों से साबित है कि ज़कात फ़र्ज़ है।

"(ऐ नबी!) तुम मुसलमानों के मालों में से सदक़ा लेकर उन्हे पाक करो और (नेकी की राह में) उन्हें बढ़ाओ।" (क़ुरआन, 9:103)

नबी (सल्ल०) ने हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) को यमन का गवर्नर बनाकर भेजा तो उनको ये हिदायतें दीं—

"तुम्हें क़िताबवालों से वास्ता पड़ेगा, उनको अल्लाह के एक होने और मेरे रसूल होने की गवाही की तरफ़ बुलाना। अगर वे इसे मान लें तो उनको सिखाना कि अल्लाह ने रोज़ाना पाँच नमाज़ें फ़र्ज़ की हैं, अगर वे इसको मान लें तो उन्हें बताना कि अल्लाह ने तुम्हारे मालों पर सदक़ा फ़र्ज़ किया है जो तुम्हारे मालदारों से लिया जाएगा और तुम्हारे ग़रीबों को दिया जाएगा, अगर वे इसे भी मान लें तो उनके अच्छे और उम्दा मालों से परहेज़ करना और मज़लूम की बद्दुआ से बचना कि उसके और अल्लाह के बीच कोई रोक नहीं है।" (हदीस)

तमाम इस्लामी उलमा का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि ज़कात के फ़र्ज़ होने से इनकार करनेवाला मुसलमान नहीं रहता।

ज़कात नेक लोगों की मुस्तक़िल सिफ़त है

"यक़ीनन अल्लाह का डर रखनेवाले बाग़ों और (जल के) चश्मों के बीच होंगे। अल्लाह जो कुछ उन्हें देगा उससे फ़ायदा उठाएँगे, क्योंकि वे इससे पहले (दुनियावी ज़िन्दगी में) बेहतरीन अमल करनेवाले थे। रातों को सोते कम थे और रात के आख़िरी हिस्से (भोर के समय) में माफ़ी माँगते थे। और उनके मालों में माँगनेवालों और महरूम लोगों का हक़ था।" (क़ुरआन, 51:15-19)

"और ईमानवाले मर्द और ईमानवाली औरतें, ये सब एक-दूसरे के सरपरस्त और मददगार हैं, भलाई का हुक्म देते हैं बुराई से रोकते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात देते हैं, और अल्लाह और उसके रसूल का कहना मानते हैं। ये वे लोग हैं जिनपर अल्लाह की रहमत नाज़िल होगी।" (क़ुरआन, 9:71)

"वे लोग जिन्हें ज़मीन में हम इक्तिदार अता करें तो वे नमाज़ क़ायम करेंगे, ज़कात देंगे, नेकियों का हुक्म करेंगे और बुराइयों से रोकेंगे और तमाम मामलों का अंजाम अल्लाह ही के हाथ में है।" (क़ुरआन, 22:41)

इन आयतों से नेक लोगों की जो ख़ूबियाँ सामने आई हैं उनमें उनकी एक मुस्तक़िल सिफ़त (ख़ूबी) अल्लाह की राह में ख़र्च करना और ज़कात अदा करना भी है।

ज़कात की अहमियत

नबी(सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अल्लाह सदक़े अपने दाएँ हाथ से क़बूल करता और उनको बढ़ाता रहता है जैसे कोई अपने बछड़े को पालता है यहाँ तक कि सदक़ा का एक-एक लुक़मा उहुद पहाड़ जैसा हो जाता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं—

"बनू तमीम का एक आदमी आया और बोला, ऐ अल्लाह के रसूल! मैं एक मालादार आदमी हूँ। मेरे बाल-बच्चे भी बहुत हैं, मेरे यहाँ मेहमानों की भी भीड़ रहती है। मुझे बताइए कि मैं ख़र्च किस तरह करूँ? रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, अपने माल की ज़कात निकालो, क्योंकि वह पाक करनेवाली है, वह तुम्हें पाक करेगी। अपने रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक करो, ग़रीबों, पड़ोसियों, और माँगनेवालों का हक़ पहचानो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

"हज़रत जाबिर (रज़ि०) ने पूछा : 'ऐ अल्लाह के रसूल! अगर कोई आदमी अपने माल की ज़कात अदा करे तो?' (उसे क्या मिलेगा?) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, 'जो आदमी अपने माल की ज़कात अदा करेगा उससे उसकी बुराई दूर हो जाएगी'।"

अल्लाह की राह में ख़र्च न करने का नतीजा

"जो लोग सोना-चाँदी जमा करके रखते हैं और उसे अल्लाह के रास्ते में ख़र्च नहीं करते, उन्हें दर्दनाक अज़ाब की ख़ुशख़बरी सुना दो। जिस दिन इसे (सोने-चाँदी को) जहन्नम की आग में तपाया जाएगा, फिर उससे

उनकी पेशानियों, पहलुओं और पीठों को दाग़ा जाएगा, (और कहा जाएगा) यह है तुम्हारा वह माल जो तुमने अपने लिए जमा किया था, इसका मज़ा चखो।" (क़ुरआन, 9:34-35)

"नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया! जिसको अल्लाह ने माल दिया और उसने ज़कात अदा नहीं की, उसके ऊपर क़ियामत के दिन एक गंजा साँप छोड़ा जाएगा, उसकी दो ज़बानें होंगी, वह उसकी गर्दन में लिपट जाएगा, वह उसके बाज़ुओं और जबड़ों को डसेगा और कहेगा, मैं तेरा ख़ज़ाना हूँ, मैं तेरा माल हूँ।" (हदीस)

ज़कात तमाम नबियों की शरीअतों में

तमाम नबियों की उम्मतों को हमेशा ज़कात का पाबन्द किया गया है और अल्लाह का दीन किसी भी ज़माने में 'ज़कात' के फ़र्ज़ होने से ख़ाली नहीं रहा। अल्लाह ने क़ुरआन में कुछ नबियों के ज़िक्र के बाद फ़रमाया—

"और हमने उन्हें पेशवा (नायक) बनाया जो हमारे हुक्म से लोगों को सीधा रास्ता दिखाते थे और हमने उनकी ओर नेक काम करने और नमाज़ क़ायम करने और ज़कात देने की 'वह्य' की, और वे हमारे इबादत गुज़ार बन्दे थे।" (क़ुरआन, 21:73)

हज़रत इसमाईल (अलै०) के बारे में क़ुरआन कहता है—

"और वे अपने लोगों को नमाज़ और ज़कात का हुक्म देते थे और वे अपने 'रब' के यहाँ पसन्दीदा थे।" (क़ुरआन, 19:55)

हज़रत मूसा (अलै०) ने अपनी क़ौम के लिए अल्लाह से दुनिया और आख़िरत दोनों की भलाई की दुआ माँगी, उसके जवाब में अल्लाह ने फ़रमाया है—

"अपना 'अज़ाब' तो मैं उसी को पहुँचाता हूँ जिसे मैं चाहता हूँ, पर मेरी रहमत हर चीज़ पर छाई हुई है। मैं अपनी रहमत उन लोगों के लिए ख़ास करूँगा, जो अल्लाह का डर रखनेवाले हैं और ज़कात अदा करते हैं और हमारी आयतों पर ईमान रखते हैं ।" (क़ुरआन, 7:156)

ज़कात की हिकमत

सीधा-सादा और कम अक़्ल आदमी हर किसी को दोस्त बना लेता है और उस पर भरोसा कर बैठता है और धोखा खा जाता है, मगर किसी ज़हीन, होशियार और अक़्लमन्द से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह बिना जाँचे-परखे हर किसी को दोस्त बना लेगा और उस पर पूरा भरोसा करने लगेगा। जब अक़्लमन्द

लोगों से यह ग़लत उम्मीद नहीं की जा सकती तो फिर अल्लाह जो सारे अक़्लमन्दों से बड़ा अक़्लमन्द और तमाम होशियारों से ज़्यादा होशियार बल्कि अक़्ल का पैदा करनेवाला तो वही है, उससे यह उम्मीद रखना कि वह हर किसी को बिना आज़माए दोस्त बना लेगा, बेकार की बात है।

अल्लाह इल्म, हिकमत और अक़्लो दानाई का मालिक है, लिहाज़ा सबसे पहली आज़माइश अक़्ल की लेता है। जो आदमी अपनी अक़्ल से काम लेकर अल्लाह की निशानियों में ग़ौर-फ़िक्र करे और अल्लाह को पहचान ले कि वही मेरा ख़ालिक़, मालिक, हाकिम और माबूद है। उसके सिवा कोई इबादत, पूजा और बन्दगी के लायक़ नहीं, वह अकेला है, कोई भी किसी हैसियत में उसका शरीक नहीं, और जो आदमी अल्लाह की किताब को पढ़कर उसकी तालीम और हिदायत को समझ कर पहचान ले कि हक़ीक़त में यह अल्लाह ही का कलाम और उसकी हिदायत है, और जो आदमी अल्लाह के नबी (सल्ल०) का पैग़ाम, अख़लाक़, सीरत और किरदार देखकर पहचान ले कि हक़ीक़त में यह अल्लाह के रसूल हैं, इसके बाद अल्लाह और उसके रसूल की तमाम तालीमात और अहकाम क़बूल कर ले। ऐसा आदमी पहले इम्तिहान में कामयाब हो जाता है और उसकी गिनती अल्लाह के वफ़ादारों में होने लगती है।

दूसरा इम्तिहान उसकी अमली क़ुव्वत का लिया जाता है। हुक्म है कि जब भी पुकार हो तो फ़ौरन तमाम काम-धन्धे, कारोबार तथा दिलचस्पियाँ छोड़-छाड़ कर हमारे दरबार में हाज़िर हो जाओ। चौबीस घन्टों में पाँच बार पुकारा जाता है कि अपनी नींद और आराम, अपने काम-काज और दिलचस्पियाँ, फ़ायदे, लुत्फ़ और तफ़रीह सब छोड़ो और फ़र्ज़ पूरा करो। हर मौसम और हर हाल में पाक-साफ़ होकर मशक़्क़त झेलकर दौड़े हुए आओ और हाज़िरी दो। फिर हुक्म देता है कि सुबह से शाम तक भूखे-प्यासे रहो, नफ़्स की ख़्वाहिशों को रोके रखो, नफ़्स पर क़ाबू रखो, हमारे लिए मुसीबतें झेलने और मशक़्क़त बरदाश्त करने की मश्क़ करो और सब्र की आदत डालो, इस इम्तिहान में भी जो आदमी कामयाब हो जाता है उससे फिर तीसरा इम्तिहान लिया जाता है।

जो आदमी छोटे दिल का, पस्त हिम्मत, कम हौसला और तंग ज़ेहन का हो, वह अल्लाह के काम का नहीं हो सकता। जिस आदमी का यह उसूल हो कि चमड़ी जाए दमड़ी न जाए, वह अल्लाह के काम का नहीं हो सकता, जो कंजूस हो वह अल्लाह का दोस्त नहीं हो सकता। जो अपने गाढ़े पसीने की कमाई ख़ुशी-ख़ुशी ख़ुदा की राह में न लुटा सकता हो वह ख़ुदा का महबूब कैसे हो सकता है। वह अल्लाह जो दानाई और हिकमत में सबसे बढ़ा हुआ है वह उस आदमी को दोस्त

कैसे बना सकता है और उस पर भरोसा कैसे कर सकता है जो दावे तो बड़े-बड़े करे, लेकिन ज़बानी जमा-ख़र्च से आगे कोरा हो।

अल्लाह तआला ने ज़कात फ़र्ज़ करके इनसान को उसकी इस कमज़ोरी पर क़ाबू पाने के लिए एक बेहतरीन ज़रिया और मेयार सामने रख दिया है। वह ज़कात के पैमाने और अल्लाह के रास्ते में ख़र्च की कसौटी पर अपनी वफ़ादारी और फ़रमाँबरदारी को ख़ुद जाँच सकता है और जितना ऊँचा उड़ना और उठना चाहे, उड़ और उठ सकता है—

> "तुम नेकी हरगिज़ नहीं पा सकते जब तक कि वे चीज़ें अल्लाह की राह में ख़र्च न करो, जो तुम्हें ज़्यादा महबूब (पसन्द) हैं।"
>
> (क़ुरआन, 3:92)

> "और जो लोग दिल की तंगी से बचा लिए गए वही कामयाबी और फ़लाह पानेवाले लोग हैं।" (क़ुरआन, 64:16)

ज़कात किन लोगों पर फ़र्ज़ है

इस्लाम ने अपने माननेवालों पर क़ानूनी तौर पर सिर्फ़ ज़कात लाज़िम की है लेकिन अख़लाक़ी तौर पर ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने पर उभारा है। जैसे क़ुरआन में है—

> "ऐ नबी! लोग तुमसे पूछते हैं कि वे क्या ख़र्च करें (अल्लाह की राह में) ? कह दो, तुम्हारी ज़रूरतों से जो बचे वह ख़र्च करो।"
>
> (क़ुरआन, 2:219)

यानी तुम जितना ऊँचा उठ सकते हो उठो, और जितनी ऊँची उड़ान भर सकते हो भरो, अपने और अपने बाल-बच्चों के खाने, कपड़े, रहने, दवा, तालीम-तरबियत से जो बचे उसे अल्लाह के रास्ते में दे डालो।

'नफ़्ल सदक़ात' और 'ख़ैरात' जितनी ज़्यादा हो सके हर मुसलमान को करना चाहिए, लेकिन ज़कात सिर्फ़ उन लोगों पर फ़र्ज़ होती है जिनमें नीचे लिखी शर्तें पाई जाएँ—

(1) **मुसलमान होना**— ग़ैर मुस्लिम पर ज़कात नहीं है। इस्लामी हुकूमत में ग़ैर मुस्लिम से सिर्फ़ 'जिज़्या' (रक्षा-कर) लिया जाता है। उश्र और ज़कात सिर्फ़ मुसलमानों पर फ़र्ज़ होती है।

(2) **आज़ाद होना**— ग़ुलाम पर ज़कात फ़र्ज़ नहीं है।

(3) **आक़िल होना**— यानी दीवाने और पागल पर ज़कात फ़र्ज़ नहीं है।

(4) बालिग़ होना— यानी नाबालिग़ बच्चों पर ज़कात फ़र्ज़ नहीं है।

(5) निसाब का मालिक होना— यानी जो लोग साढ़े सात तोले सोना या साढ़े बावन तोले चाँदी या उसके बराबर क़ीमत के सामान या नक़दी के मालिक हों उनपर ज़कात फ़र्ज़ है। इसी तरह तिजारत का माल और जानवरों की ख़ास तादाद और पैदावार पर भी ज़कात फ़र्ज़ है । जिस मुक़र्रर की हुई मिक़्दार या तादाद पर ज़कात फ़र्ज़ होती है उसे निसाब कहते है।

(6) छठी शर्त यह है कि माल इनसान की बुनियादी ज़रूरतों से ज़्यादा हो, खाना-पीना, घर-मकान, और दवा-इलाज वग़ैरह से बचे हुए माल पर ज़कात फ़र्ज़ होती है।

(7) उस आदमी पर क़र्ज़ न हो। माल क़र्ज़ की रक़म से कम से कम निसाब-भर ज़्यादा हो।

(8) उस माल पर एक साल का गुज़रना शर्त है।

(9) माल में बढ़ने की सलाहियत और नफ़ा देने की इस्तेदाद (क्षमता) मौजूद होना भी ज़रूरी है।

अख़लाक़ी और रूहानी शर्तें

ये तो थीं ज़कात फ़र्ज़ होने की क़ानूनी और फ़िक़ही शर्तें, लेकिन वे रूहानी और अख़लाक़ी शर्तें क्या हैं जिनसे ज़कात में जान पड़ती है। इनफ़ाक़, इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह बनता है और ये इनफ़ाक़ अल्लाह की नज़र में क़बूलियत का दर्जा पाते हैं। जिस नीयत और जिस जज़्बे के साथ अल्लाह की राह में ख़र्च करना चाहिए वे ये हैं—

(1) सबसे पहली शर्त यह है कि इनसान अल्लाह का वफ़ादार और फ़रमाँबरदार होने के साथ-साथ मुख़लिस भी हो। कोई भी अमल अल्लाह क़बूल नहीं करता जब तक उसके पीछे यह रूह न हो कि वह सिर्फ़ अल्लाह के लिए है। ज़कात और सदक़ात भी सिर्फ़ ख़ुदा की रज़ा और ख़ुशनूदी हासिल करने की नीयत के बग़ैर हरगिज़ क़ुबूल नहीं होंगे। अल्लाह क़ुरआन में फ़रमाता है—

"तुम जो कुछ ख़र्च करो अल्लाह की ख़ुशी की तलाश में ख़र्च करो।"

(क़ुरआन, 2:272)

"अपने सदक़ात को एहसान जताकर और दुख देकर उस शख़्स की तरह ख़ाक में न मिला दो (यानी बरबाद न कर दो), जो अपना माल लोगों को दिखाने के लिए ख़र्च करता है।" (क़ुरआन, 2:264)

(2) अल्लाह की राह में ख़र्च करने के पीछे दिखावा या शोहरत वग़ैरह कोई बातिल मक़सद नहीं होना चाहिए। और न ही यह बात ठीक है कि उस आदमी पर एहसान जताकर दुख पहुँचाया जाए जिसको ज़कात या सदक़े की रक़म से मदद की गई है। क़ुरआन में है—

"जो लोग अपने माल अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं और एहसान नहीं धरते, न दुख पहुँचाते हैं, उनके लिए उनके 'रब' के पास अज्र है न उन्हें कोई डर होगा, न वे ग़मगीन होंगे। एक भली बात और दरगुज़र से काम लेना उस सदक़े से बेहतर है जिसके पीछे दुख देने की बात हो।"

(क़ुरआन, 2:262-263)

(3) अल्लाह की राह में अच्छा और पाक माल देना चाहिए। ख़राब से ख़राब छाँटकर कपड़ा या खाना अल्लाह के लिए निकालना घटिया ज़ेहनियत और नीचपन की बात है। ऐसे लोगों को अल्लाह से भी अच्छे अज्र की उम्मीद न बाँधनी चाहिए। क़ुरआन में है—

"ऐ ईमान लानेवालो! पाक चीज़ों में से जो तुमने कमाया है, और जो कुछ तुम्हारे लिए हमने ज़मीन से पैदा किया है उसमें से ख़र्च करो, और ख़र्च करते हुए उसके ख़राब हिस्से का इरादा न करो।"

(क़ुरआन, 2:267)

(4) जहाँ तक हो सदक़ा-ख़ैरात छिपाकर करना चाहिए, यहाँ तक कि एक हाथ से दो तो दूसरे हाथ को भी ख़बर न हो। हाँ, फ़र्ज़ ज़कात के बारे में लोगों को ख़बर हो जाए तो बेहतर है, लेकिन इसमें भी मक़सद यह रहे कि लोगों को ज़कात निकालने का शौक़ पैदा हो। क़ुरआन में है—

"अगर तुम खुले तौर पर सदक़ा दो, तो यह भी अच्छी बात है, और अगर उसे छिपाकर ग़रीबों को दो, तो तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है, और वह तुम्हारी कितनी ही बुराइयों को दूर कर देगा।" (क़ुरआन, 2:271)

(5) इस्लाम के तमाम हुक्मों में सन्तुलन और ऐतदाल पाया जाता है। एक तरफ़ अल्लाह के लिए मुहताजों पर ख़र्च करने पर उभारा गया है, दूसरी ओर ग़रीबों और मुहताजों में ख़ुद्दारी पैदा करने की कोशिश की गई है, यहाँ तक कि भीख माँगने का पेशा अपनानेवालों और बिना ज़रूरत माँगनेवालों के बारे में यह डरावा है कि वे लोग क़ियामत में सबके सामने इस तरह लाए जाएँगे कि उनके चेहरों पर खरोंच होगी, गोश्त नुचा हुआ होगा, उनसे ख़ून बह रहा होगा और वे सबके सामने अपमानित और रुसवा होंगे। इसके अलावा इस्लाम ने ऊपरवाले हाथ यानी

देनेवाले हाथ को नीचेवाले हाथ यानी लेनेवाले हाथ से बेहतर बताया है। इस्लाम तो यह चाहता है कि रोटी, कपड़ा तो हर आदमी को मिले लेकिन बुरे काम करने के लिए आवारा लोगों को पैसे नहीं देना चाहिए। क़ुरआन में कहा गया—

"और अपने उस माल को जिसे अल्लाह ने तुम्हारे लिए ज़िन्दगी गुज़ारने का ज़रिया बनाया है, नासमझ और बेअक़्ल लोगों को न दो। हाँ, उन्हें उसमें से खाने-पहनने को दो।" (क़ुरआन, 4:5)

(6) इस्लाम कहता है कि सदक़ा और ख़ैरात भी एक हद के अन्दर होना चाहिए। मुहताजों और ग़रीबों का यक़ीनन हमारी दौलत में हक़ है, मगर इतना नहीं कि हम अपने को नज़रअंदाज़ करके और अपने बाल-बच्चों को छोड़कर दें या उन्हें मुहताजों के मक़ाम पर लाकर खड़ा कर दें और उनका हक़ ग़रीबों को दे दें बल्कि सादा और दरमियानी ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए जितनी ज़रूरत आदमी को होती है उतनी अपने और अपने बाल-बच्चों की ज़रूरतों पर ख़र्च करना चाहिए, इसके बाद ग़रीबों और मुहताजों पर ख़र्च करना चाहिए—

"(अल्लाह के प्यारे बन्दे वे हैं) जो ख़र्च करते हैं तो न तो फ़ज़ूल-ख़र्ची करते हैं और न तंगदिली का सबूत देते हैं, बल्कि इन दोनों के बीच की राह अपनाते हैं।" (क़ुरआन, 25:67)

सदक़े किन लोगों को दिए जाएँ

इस्लाम ने मुसलमानों के माल में ख़ुद उनके अपने और अपने बाल-बच्चों के अलावा उनके रिश्तेदारों, पड़ोसियों, ग़रीबों, मिसकीनों, यतीमों, बेवाओं, मुसाफ़िरों, ग़ुलामों, क़ैदियों, ख़ादिमों, अजनबियों और ज़रूरतमन्दों का हक़ रखा है। इस सिलसिले में मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम के बीच फ़र्क़ नहीं रखा है। जो भी भूखा हो उसे खाना मिलना चाहिए, जो भी नंगा हो उसे कपड़ा मिलना चाहिए, चाहे वह मुस्लिम हो या ग़ैर मुस्लिम, अपना हो या ग़ैर, अच्छा हो या बुरा। क़ुरआन में है—

"रिश्तेदारों को उनका हक़ दो, मुहताज को भी और मुसाफ़िर को (भी उनके हक़ दो)।" (क़ुरआन, 30:38)

"(और नेक वह है) जो अल्लाह की मुहब्बत में रिश्तेदारों, यतीमों, मुहताजों, मुसाफ़िरों, माँगनेवालों और ग़ुलामों पर माल ख़र्च करता है।" (क़ुरआन, 2:177)

"माँ-बाप, रिश्तेदारों, यतीमों, रिश्तेदार पड़ोसियों, अजनबी पड़ोसियों, पास बैठनेवालों, मुसाफ़िरों और अपने लौंडी-ग़ुलामों के साथ अच्छा सुलूक करते रहो।" (क़ुरआन, 4:36)

"और वे अल्लाह की मुहब्बत में मुहताज, यतीम और क़ैदी को खाना खिलाते हैं।" (क़ुरआन, 76:8)

"सदक़ा उन ग़रीबों के लिए है जो अपना सारा वक़्त अल्लाह की राह में देकर ऐसे घिर गए हैं कि रोज़ी कमाने के लिए दौड़-धूप नहीं कर सकते।" (क़ुरआन, 2:273)

ज़कात कहाँ ख़र्च की जाए

ख़ास सदक़े यानी ज़कात की मदें भी अल्लाह की ओर से तय हैं। (क़ुरआन मजीद में फ़रमाया गया—

"सदक़े फ़क़ीरों के लिए, मिसकीनों के लिए और उन लोगों के लिए जो ज़कात के काम पर लगे हों और जिनके दिलों को मोहना हो, और गर्दनें छुड़ाने के लिए, और क़र्ज़दारों के लिए और अल्लाह के रास्ते में, और मुसाफ़िरों के लिए, यह अल्लाह की तरफ़ से फ़र्ज़ किए गए हैं। और अल्लाह जाननेवाला और हिकमतवाला है।" (क़ुरआन, 9:60)

इस आयत से तीन बातें मालूम हुईं—

(1) ज़कात फ़र्ज़ है।

(2) ज़कात की आठ मदें हैं।

(3) ज़कात का फ़र्ज़ होना और उनकी मदों का तय किया जाना दोनों अल्लाह के इल्म और हिकमत की बुनियाद पर हैं।

ज़कात की आठ मदें इस तरह हैं—

(1) फ़क़ीर

यानी वे लोग जिनके पास कुछ न कुछ तो हो, मगर वे तंगदस्त हों और गुज़र-बसर मुश्किल से हो रहा हो।

(2) मिसकीन

जिनके पास पेट भरने को रोटी और तन ढाँकने को कपड़ा तक न हो।

(3) आमिलीन

ज़कात को वसूल करने और उसे तक़सीम करने के लिए इस्लामी हुकूमत या किसी इस्लामी इदारे (संस्था) की ओर से जिन लोगों को रखा जाएगा, उनकी तनख़्वाह ज़कात-फ़ंड से दी जाएगी।

(4) मुअल्लिफ़तुल क़ुलूब (दिलों को मोहना)

वे लोग जिनको इस्लाम की हिमायत के लिए या इस्लाम दुश्मनी से रोकने

के लिए या इस्लाम पर जमाने के लिए रुपया-पैसा देने की ज़रूरत हो तो उनको ज़कात-फ़ंड से दे सकते हैं।

(5) अर-रिक़ाब (ग़ुलाम को आज़ाद कराना)

जो ग़ुलाम रक़म देकर आज़ाद हो सकता हो उसकी गर्दन छुड़ाने में ज़कात से मदद की जानी चाहिए।

(6) अलग़ारिमीन (क़र्जदार)

क़र्ज़ के बोझ से दबे हुए लोग जिनको क़र्ज़ से निकलने का कोई रास्ता न मिल रहा हो।

(7) फ़ी सबीलिल्लाह (अल्लाह के रास्ते में)

इस्लाम को फैलाने और उसको क़ायम करने की कोशिशों में, जिहाद में, हज-यात्रा में मुहताज होनेवाले हाजी, इस्लाम की दावत और तबलीग़ करनेवालों पर ज़कात की रक़म ख़र्च की जा सकती है।

(8) मुसाफ़िर

एक आदमी चाहे वह मालदार हो, लेकिन सफ़र में किसी वजह से मुहताज हो गया तो ज़कात फ़ंड से उसकी मदद की जा सकती है।

जहाँ तक मुमकिन हो इनसान को सदक़े और ज़कात लेने से बचना चाहिए और अपने गाढ़े पसीने की कमाई से हलाल और पाक रोज़ी खानी चाहिए, उसे ख़ुद्दारी के साथ ज़िन्दगी गुज़ारनी चाहिए। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "जो सुबह-शाम की रोज़ी का सामान रखता हो वह अगर हाथ फैलाता है तो अपने हक़ में आग बटोरता है।"

और फ़रमाया—

> "मैं यह पसन्द करता हूँ कि इनसान लकड़ियाँ काटे और अपना पेट पाले, न कि दूसरों के सामने हाथ फैलाता फिरे।"

और फ़रमाया—

> "जिसके पास खाने को हो या वह कमाने की ताक़त रखता हो उसे चाहिए कि सदक़ा या ज़कात न ले।" (हदीस)

हज

'हज' को हज इसलिए कहा जाता है कि उसमें अल्लाह के दरबार में जाने और अल्लाह के घर (काबा) की ज़ियारत और दीन के 'शआइर' (निशानियों) की इज़्ज़त और ताज़ीम का इरादा किया जाता है। अल्लाह से मुहब्बत का इज़हार और उसके कलिमे को बुलंद करने का वादा किया जाता है।

क़ुरआन मजीद की सूरा अल-बक़रा, आले-इमरान, अल-माइदा और सूरा अल-हज के, हज से मुतअल्लिक़ हिस्से का अध्ययन करने से हज के बारे में जो बातें सामने आती हैं, वे ये हैं—

(1) बैतुल्लाह (अल्लाह का घर काबा) वह पहली इबादतगाह है जो इनसानों के लिए बनाई गई।

(2) बैतुल्लाह दुनिया के तमाम इनसानों के लिए हिदायत का केन्द्र और मरकज़ है।

(3) बैतुल्लाह अपने अन्दर बहुत-सी निशानियाँ रखता है। उसमें अल्लाह की बहुत-सी निशानियाँ हैं। उसकी बुनियाद पाकीज़ा और मुक़द्दस हाथों ने रखी है, उसकी बुनियाद में हज़रत इबराहीम (अलै०) और हज़रत इसमाईल (अलै०) की पाक आरज़ूएँ और तमन्नाएँ छिपी हैं। उसकी तामीर के सदियों बाद हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आपके बड़े-बड़े सहाबियों के ज़रिए दुनिया को उस मरकज़ से जो हिदायत मिली तारीख़ गवाह है कि वह घर हिदायत की मंज़िल के निशानों का रोशन मीनार है।

(4) अल्लाह का घर अमन और शान्ति का घर है।

(5) हज अल्लाह का हक़ है जो बन्दों पर फ़र्ज़ है।

(6) हज के लिए 'इस्तिताअत' (क्षमता) शर्त है। जो इसकी 'इस्तिताअत' नहीं रखता उसपर हज फ़र्ज़ नहीं है।

(7) इस्तिताअत के बावजूद हज न करना इनसान को कुफ़्र की हद तक पहुँचा देता है। (ऐसे आदमी को अपने ईमान की ख़ैर मनाना चाहिए और तौबा करके जल्द से जल्द हज की फ़िक्र करनी चाहिए।)

(8) हज फ़लाह और कामयाबी का ज़रिया है, बशर्ते कि अल्लाह से तक़वा की बुनियाद पर हो और बाप-दादों के ग़लत तरीक़े की गन्दगी उसमें शामिल न हो।

(9) मस्जिदे हराम और हरम की हुदूद में लड़ाई-झगड़ा और क़त्ल हराम है। हाँ, बचाव और हिफ़ाज़त के लिए लड़ाई की इजाज़त है।

(10) प्रतिष्ठित अर्थात् हराम महीनों (रजब, ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा, और मुहर्रम) का एहतिराम (आदर) करना चाहिए। इनमें दुश्मनों पर हमला जायज़ नहीं। हाँ, हिफ़ाज़त के लिए ज़ायज़ है।

(11) हज और उमरा पूरा करना ज़रूरी है, क्योंकि शुरू करने के बाद नफ़्ल इबादत भी लाज़मी हो जाती है।

(12) अगर हाजी को रास्ते में कोई ऐसी रुकावट पेश आ जाए जिससे वह जा न सकता हो तो जो भी क़ुरबानी आसानी से हासिल हो उसे भेज दे।

(13) जब क़ुरबानी अपने मक़ाम पर पहुँच जाए तब सिर मुँडाए और इहराम की पाबन्दियों से आज़ाद हो जाए।

(14) जो आदमी सिर में तकलीफ़ या बीमारी की वजह से सिर न मुँडाए उसे सदक़ा या क़ुरबानी की सूरत में फ़िद्या देना चाहिए।

(15) जो कोई हाजी रास्ते की मुसीबत से छुटकारा पाकर बाद में पहुँच जाए तो वह 'हज तमत्तो' करे यानी पहले उमरा करे फिर हज करे। उसे हैसियत के मुताबिक़ क़ुरबानी करनी चाहिए। अगर क़ुरबानी न कर सके, तो वह तीन रोज़े हज के दौरान और सात घर लौटने के बाद रखे।

(16) ''हज तमत्तो' यानी उमरा और हज दोनों की एक साथ नीयत करना सिर्फ़ मक्का के बाहरवालों के लिए है।

(17) हज के दौरान यानी एहराम की हालत में सभी तरह के शहवानी काम और बातें, गुनाह के काम और लड़ाई-झगड़े मना हैं।

(18) ज़ादेराह (सफ़र का सामान) साथ लिए बग़ैर हज के लिए जाना सही नहीं है।

(19) हज के सफ़र में तिजारत की जा सकती है, लेकिन असल मक़सद हज हो, न कि कारोबार।

(20) 'अरफ़ात' से वापसी पर 'मुज़दलिफ़ा' में ठहरकर अल्लाह को याद करना चाहिए।

(21) सारे हाजियों को अरफ़ात जाना चाहिए। क़ुरैश और उनके हिमायती क़बीले अरफ़ात जाने को अपनी शान से गिरा हुआ समझते थे, लेकिन इस्लाम किसी तरह की ऊँच-नीच को पसन्द नहीं करता। वह कहता है, सारे मुसलमान भाई-भाई हैं।

(22) हज पूरा हो चुकने के बाद भी अल्लाह की याद और उसका ज़िक्र करते रहना चाहिए।

(23) 'तशरीक़' के दिनों में मिना से मक्का को वापसी दूसरे दिन भी हो सकती है और तीसरे दिन भी, लेकिन अल्लाह का ज़िक्र, तक़वा और आख़िरत का ध्यान हर समय रहना चाहिए। (ज़िलहिज्जा की आठवीं तारीख़ को 'यौमुत-तरविया', नौवीं तारीख़ को 'यौमुल अरफ़ा', दसवीं को 'यौमुल-नह्र', और ग्यारह, बारह और तेरह तारीख़ों को अय्यामुत्तशरीक़ कहते हैं)

(24) इहराम की हालत में (ख़ुशकी का) शिकार करना जायज़ नहीं।

(25) अल्लाह की इबादत की निशानियों की बेहुरमती (अनादर) करना हराम है और उनका एहतिराम करना ज़रूरी है।

(26) हराम (प्रतिष्ठित) महीनों (मुहर्रम, रजब, ज़िल-हिज्ज, ज़ीक़ाद) का एहतिराम भी लाज़मी है।

(27) क़ुरबानी के जानवरों को मारना जायज़ नहीं है। जो जानवर अल्लाह की नज्र कर दिए जाएँ उन पर हाथ डालना गुनाह है ।

(28) हाजियों को सताना, छेड़ना और तक़लीफ़ पहुँचाना हराम है।

(29) मस्जिदे हराम तमाम लोगों के लिए है (देसी, परदेसी, मुक़ीम, मुसाफ़िर हर एक को उसमें अल्लाह की इबादत का हक़ है)।

(30) मस्जिदे हराम की बेहुरमती और अल्लाह की इबादत से फिर जाना दर्दनाक अज़ाब का सबब है।

(31) अल्लाह तआला ने अपने घर को हर तरह की गन्दगी और शिर्क से पाक रखने का हुक्म दिया है।

(32) अल्लाह का घर तवाफ़ करनेवालों और नमाज़ पढ़नेवालों के लिए है।

(33) हज के लिए आम एलान है ताकि हर आदमी तौफ़ीक़ और इस्तिताअत के मुताबिक़ दुनिया और आख़िरत का फ़ायदा उठाए।

(34) 'ज़बह' अल्लाह के नाम से करना चाहिए उसमें से ख़ुद भी खाना चाहिए और ग़रीबों को भी खिलाना चाहिए।

(35) 'ज़बह' के बाद इहराम की पाबन्दियाँ ख़त्म हो जाती हैं। सिर मुँडाकर या बाल कटवाकर ग़ुस्ल करना चाहिए और फिर कपड़े बदल कर आख़िरी तवाफ़ करना चाहिए।

(36) क़ुरबानी के ऊँट अल्लाह की निशानियाँ (शआइर) हैं।

(37) क़ुरबानी का गोश्त और ख़ून अल्लाह को नहीं पहुँचता। सिर्फ़ वह तक़वा पहुँचता है जो क़ुरबानी के पीछे काम करता है।

(38) क़ुरबानी के जानवरों को अल्लाह ने तुम्हारे वश में कर दिया है ताकि तुम उसकी बड़ाई की तसबीह करके उसका कलिमा बुलंद करो।

हज और हदीसें

ये हज के सिलसिले में क़ुरआन की तालीमात का ख़ुलासा था। अब इस सिलसिले में कुछ हदीसें अनेक शीर्षकों के तहत पढ़िए—

हज अफ़ज़ल अमल है

नबी (सल्ल०) से पूछा गया कि कौन-सा काम अफ़ज़ल है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—"अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाना।" फिर पूछा गया कि इसके बाद कौन-सा काम अफ़ज़ल है? आपने फ़रमाया—"अल्लाह की राह में जिहाद।" पूछा गया, फिर? फ़रमाया—"हज्जे मबरूर" (जिस हज में इख़लास के साथ उसके पूरे तरीक़ों पर अमल किया जाए उसे हज्जे मबरूर कहते हैं।)"

(हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

हज एक तरह का जिहाद है

हज़रत आइशा (रज़ि०) फ़रमाती हैं, मैंने पूछा —"ऐ अल्लाह के रसूल! जिहाद अफ़ज़ल अमल है तो क्या हम जिहाद न करें?" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया —"अफ़ज़ल जिहाद हज्जे मबरूर है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

हज गुनाहों को मिटा देता है

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —"जिस आदमी ने हज किया और शहवानी कामों और गुनाहों से बचा रहा, तो हज से वापस होने पर वह ऐसा (गुनाहों से पाक) होगा जैसा उसकी माँ ने उसे जना था।"

(हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

हाजी लोग अल्लाह के नुमाइन्दे हैं

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया —"हज और उमरा करनेवाले अल्लाह के नुमाइन्दे हैं, अगर वे अल्लाह को पुकारें तो अल्लाह उनकी सुनता है और अगर वे इस्तिग़फ़ार करें तो अल्लाह उनको माफ़ कर देता है।"

(हदीस)

हज का बदला जन्नत है

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया —"एक उमरा दूसरे उमरे तक के गुनाहों का 'कफ़्फ़ारा' है (यानी गुनाहों को मिटा देता है) और हज्जे मबरूर का बदला जन्नत ही है।" (हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

हज ज़िन्दगी में एक बार फ़र्ज़ है

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया —"ऐ लोगो! अल्लाह ने तुमपर हज फ़र्ज़ किया है, इसलिए हज किया करो।" एक आदमी ने पूछा —"ऐ अल्लाह के रसूल! क्या हर साल?" इस पर नबी (सल्ल०) चुप रहे। उस आदमी ने तीन बार यही पूछा तो आपने फ़रमाया—"अगर मैं हाँ कर दूँ तो हर साल वाजिब हो जाएगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास (रज़ि०) की रिवायत में है कि हज एक ही बार है, तो जो एक से ज़्यादा करे वह नफ़्ल है। (हदीस : मुसनद अहमद)

हज में देरी नहीं करनी चाहिए

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया "जो शख़्स हज का इरादा करे तो उसे जल्दी करनी चाहिए क्योंकि हो सकता है बीमार हो जाए या सवारी का इन्तिज़ाम बाक़ी न रहे या और कोई ज़रूरत रुकावट बन जाए।" (हदीस)

औरत के साथ शौहर या 'महरम' का होना शर्त है

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —"कोई मर्द किसी औरत के साथ तनहाई में हरगिज़ न हो, औरत के साथ उसका कोई महरम ज़रूर हो। औरत महरम के बग़ैर सफ़र न करे।" इस पर एक आदमी खड़ा हुआ और बोला— "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी बीवी हज करने गई है और मेरा नाम फ़लाँ ग़ज़्वे (जंग) के लिए लिख लिया गया है।" इसपर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया —"जाओ, अपनी बीवी के साथ हज करो।"

(हदीस)

मैयत की तरफ़ से हज

अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि क़बीला जुहैना की एक औरत नबी (सल्ल०) के पास आई और कहा कि मेरी माँ ने हज करने का इरादा किया था, मगर हज न कर सकी और मर गई, क्या उसकी तरफ़ से मैं हज कर सकती हूँ? नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया —"हाँ, उसकी तरफ़ से हज करो! तुम्हारी माँ पर क़र्ज़ होता तो क्या तुम अदा

न करतीं? अल्लाह का क़र्ज़ अदा करो, वह इसका ज़्यादा हक़दार है।"
(हदीस)

हज्जे-बदल

क़बीला ख़सअम की एक औरत ने पूछा —"ऐ अल्लाह के रसूल! हज की ज़िम्मेदारी जो अल्लाह के बन्दों पर डाली गई है, वह मेरे बूढ़े बाप पर वाजिब हो गई है, वे सवारी पर भी नहीं चल सकते। क्या मैं उनकी तरफ़ से हज कर सकती हूँ?" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया— "हाँ!" (यह बात नबी सल्ल० के आख़िरी हज की है।) (हदीस)

हज के फ़र्ज़ होने की शर्तें

(1) मुसलमान होना

(2) बालिग़ होना

(3) आक़िल (समझदार) होना

(4) आज़ाद होना

(5) इस्तिताअत (सक्षम) होना

(6) तन्दुरुस्त होना

(7) रास्ता पुरअमन होना

(8) औरत के साथ शौहर या किसी महरम का होना

ये शर्तें पाई जाएँ तो हज फ़र्ज़ होगा और अगर इनमें से एक भी कम हो तो हज फ़र्ज़ न होगा।

उन लोगों का हज जिन पर हज फ़र्ज़ नहीं है

जिन लोगों पर हज फ़र्ज़ नहीं है, अगर वे हज करें तो उनका हज हो जाएगा।

हज के फ़राइज़

हज में तीन फ़र्ज़ हैं—

(1) इहराम (2) अरफ़ात में ठहरना (3) तवाफ़े-ज़ियारत

हज के वाजिबात

हज में पाँच चीज़ें वाजिब हैं—

(1) सई (सफ़ा और मरवा पहाड़ों के बीच दौड़ना)

(2) मुज़दलफ़ा में ठहरना

(3) रमी (पत्थर मारना)

(4) हलक़ (बाल बनवाना)

(5) तवाफ़े सद्र

हज का सही तरीक़ा

हज की शुरुआत इहराम से होती है। इहराम की हैसियत हज में बिलकुल ऐसी है जैसे नमाज़ में 'तकबीर तहरीमा'। तकबीर तहरीमा के साथ ही नमाज़ शुरू हो जाती है और नमाज़ी पर नमाज़ की सारी पाबन्दियाँ आ जाती हैं। इसी तरह इहराम बाँधते ही हज शुरू हो जाता है और हज की पाबन्दियाँ ज़रूरी हो जाती हैं।

इहराम के लिए

इहराम के लिए नीचे लिखी बातों का इहतिमाम ज़रूरी है—

(1) नाख़ून कटवाना (2) मूछें काटना (3) बग़लों के बाल साफ़ करना (4) नाफ़ के नीचे के बाल साफ़ करना (5) ग़ुस्ल या सिर्फ़ वुज़ू करना (6) सिर और दाढ़ी के बाल सँवारना (7) सिले हुए कपड़े उतार कर बिना सिले कपड़े पहनना (औरतें सिले हुए कपड़े ही पहनेंगी)। (8) जिस्म और कपड़ों में ख़ुशबू लगाना (9) दो रकअत नमाज़ पढ़ना (10) हज या उमरा या दोनों की नीयत करना (11) तलबियह कहना।

तलबियह

लब्बै-क अल्लाहुम-म लब्बैक, लब्बै-क ला शरी-क ल-क लब्बैक, इन्नल् हम्-द वन्-नि अ्म-त ल-क, वल मुल-क, ला शरी-क, ल-क।

"मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ। तेरा कोई शरीक नहीं। मैं हाज़िर हूँ। यक़ीनन सारी तारीफ़ और नेमत तेरे लिए है और बादशाही भी। तेरा कोई शरीक नहीं।"

इहराम की पाबन्दियाँ

हज की नीयत के साथ तलबियह कहते ही हाजी पर नीचे लिखी बातों की पाबन्दी लग जाती है—

(1) शहवानी काम या बातें

(2) गुनाह के काम और गुनाह की बातें

(3) हर तरह के लड़ाई-झगड़े

(4) ख़ुश्की के जानवरों का शिकार और उसका गोश्त खाना

(5) शिकार की तरफ़ इशारा करना

(6) शिकार की तरफ़ रहनुमाई करना

(7) ख़ुशबू लगाना

(8) नाख़ुन काटना

(9) सिर या चेहरा छिपाना

(10) ख़तमी या साबुन वग़ैरह से सिर या दाढ़ी धोना

(11) सिर, दाढ़ी या बदन के बाल काटना या मूड़ँना

(12) सिले हुए कपड़े पहनना।

ये सब काम इहराम की हालत में मना हैं। ये पाबन्दियाँ औरतों के लिए भी हैं और मर्दों के लिए भी, लेकिन औरतों के लिए सिर खोलना मना है और चेहरा ख़ुला रखना ज़रूरी है। फ़ित्ने से बचने के लिए अलग निक़ाब लटकाए तो अच्छा है। तलबियह आवाज़ से कहना, 'मीलैन' (मील के पत्थर के दो निशानों) के बीच दौड़ना, सिर मुँडाना और सिले हुए कपड़े न पहनना भी मर्द ही के लिए ख़ास है, औरतों के लिए यह सब मना है, लेकिन थोड़ा बाल कतरना उनके लिए भी ज़रूरी है। हजरे असवद (काला पत्थर) चूमने के लिए भीड़ में घुसना भी औरतों के लिए मना है। अगर उसे हैज़ (मासिक धर्म) आ जाए तो तवाफ़ छोड़कर हज के बाक़ी सब अरकान उसे पूरा करते रहना चाहिए। इहराम की हालत में ग़ुस्ल करना और छाया में बैठना मना नहीं है।

इहराम बाँधने के बाद

'मीक़ात' से इहराम बाँधने के बाद ज़्यादा से ज़्यादा ऊँची आवाज़ में तलबियह हर नमाज़ के बाद हर ऊँचाई पर चढ़ते वक़्त, हर नीची जगह उतरते वक़्त, हर क़ाफ़िले से मिलते वक़्त और हर सुबह के वक़्त कहना चाहिए। मक्का पहुँचने पर सबसे पहले मस्जिदे हराम की तरफ़ जाएँ और क़ाबा पर नज़र पड़ते ही 'अल्लाहु अकबर' और 'ला इला-ह इल्लल्लाह' कहना चाहिए। फिर हजरे असवद की तरफ़ रुख़ करके 'अल्लाहु अकबर' और 'ला इला-ह इल्लल्लाह' कहना चाहिए। और इस तरह हाथ उठाना चाहिए जिस तरह नमाज़ में उठाते हैं। उसके बाद हजरे असवद का 'इस्तिलाम' करना चाहिए (चूमने या हाथ या छड़ी वग़ैरह से छूकर उसे चूम लेने को 'इस्तिलाम' कहते हैं।) बशर्ते कि किसी को तकलीफ़ न पहुँचे। अगर

इस्तिलाम मुमकिन न हो तो हजरे असवद के सामने खड़े होकर तकबीर (अल्लाहु अकबर कहना), तहलील (ला इला-ह इल्लल्लाह कहना) और तहमीद (अलहमदु लिल्लाह कहना) करे और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर दरूद भेजे। उसके बाद तवाफ़ करे। यह तवाफ़ आफ़ाक़ी (मक्का से बाहर के लोगों) के लिए मसनून है। और इसकी हैसियत वही है जो 'तहिय्यतुल मस्जिद' नमाज़ की है यानी इस बात का शुक्रिया कि अल्लाह के घर की ज़ियारत हुई। तवाफ़ की शुरुआत बैतुल्लाह के दरवाज़े और अपने दाईं तरफ़ से करे और चादर दाईं बग़ल से निकालकर बाएँ कन्धे पर डालकर और दाएँ कन्धे को खुला छोड़कर तवाफ़ करे। तवाफ़ में 'हतीम' (काबा का वह हिस्सा जो बनने से रह गया है) को भी शामिल कर ले, कुल सात चक्कर लगाए, हर चक्कर हजरे असवद से शुरू करे और उसी पर ख़त्म करे। पहले तीन चक्करों में सीना निकालकर और अकड़कर चले। नबी (सल्ल०) और आप के सहाबा (रज़ि०) जब सन् 7 हिजरी में उमरा के लिए तवाफ़ कर रहे थे तो काफ़िरों ने कहा, यसरिब (मदीना) के बुख़ार ने इनके चेहरे पीले कर दिए हैं। यानी ये लोग हमारा मुक़ाबला नहीं कर सकेंगे, तो नबी (सल्ल०) ने हुक्म दिया कि सीना निकालकर और अकड़कर चलें, उसके बाद से यह तरीक़ा सुन्नत बन गया। तवाफ़ के दौरान जब भी हजरे असवद के पास से गुज़रे, तकबीर, तहलील और इस्तिलाम करे और 'रुक्ने यमानी' का भी इस्तिलाम करे (काबा का वह कोना जो हजरे असवद से मिला हुआ है, यह हजरे असवद की तरफ़ मुँह करके खड़े होने पर बाईं जानिब पड़ता है)। हजरे असवद के इस्तिलाम पर तवाफ़ ख़त्म करके 'मक़ामे इबराहीम' पर जहाँ भी जगह मिले, दो रक्अत नमाज़ पढ़े। यह दो रक्अत नमाज़ तवाफ़ के हर सात चक्करों के बाद वाजिब है। नमाज़ के बाद हजरे असवद का इस्तिलाम फिर करे। उसके बाद मस्जिदे हराम से निकल कर सफ़ा पहाड़ी पर जाए और काबा की तरफ़ मुँह करके खड़ा हो और तकबीर, तहलील करे और नबी (सल्ल०) पर दरूद भेजे और हाथ उठाकर जो चाहे दुआ माँगे, फिर 'मरवा' पर जाए और 'मीलैन' के बीच दौड़े और मरवा पर भी वही करे जो सफ़ा पर किया था, इसी तरह सात बार करे। 'सफ़ा' से शुरू करे और 'मरवा' पर ख़त्म करे। इसके बाद मक्का में ठहरें और वक़्त-वक़्त पर जब भी मौक़ा मिले तवाफ़ करता रहे और जितना चाहे करे। फिर सातवीं ज़िलहिज्जा को इमाम का ख़ुतबा सुने जिसमें हज का तरीक़ा बयान किया जाता है और ज़रूरी बातें बताई जाती हैं। फिर नौवीं तारीख़ को अरफ़ात में और ग्यारहवीं को मिना में ख़ुतबा सुने। हर ख़ुतबे में दो दिन का फ़ासला होना चाहिए।

आठ ज़िलहिज्जा को सुबह ही चलकर 'मिना' पहुँचे और नौवीं ज़िलहिज्जा की सुबह तक वहीं रुके, फिर वहाँ से अरफ़ात पहुँच कर रुके. 'बतने उरना' छोड़

कर अरफ़ात के पूरे मैदान में कहीं भी ठहर सकते हैं। अरफ़ात में इमाम नौवीं तारीख़ को सूरज ढलने के बाद नमाज़ से पहले दो ख़ुतबे देता है, हाजी उसे ध्यान से सुने, उनमें अरफ़ात में ठहरना, मुज़दलफ़ा में ठहरना, रमी जिमार, क़ुरबानी, सिर मुँडाना और तवाफ़े ज़ियारत के बारे में तफ़सीली जानकारी दी जाती है। अरफ़ात में ज़ुह्र और अस्र की नमाज़ें ज़ुह्र ही के वक़्त एक अज़ान और दो इक़ामतों से पढ़ी जाएँ और फिर मस्जिदे नमरा से इमाम और सब लोग 'जबलें रहमत' के पास जाएँ। इमाम वहाँ ऊँटनी पर सवार होकर गिड़गिड़ा कर दुआ करे और लोग आमीन कहें। इमाम लोगों को हज के तरीक़े बताए और लोग उसकी बातों को ध्यान से सुनें। दुआ और हिदायतों का सिलसिला सूरज डूबने तक जारी रहना चाहिए। अरफ़ात में ठहरना फ़र्ज़ है। नौवीं तारीख़ को अरफ़ात किसी न किसी वक़्त पहुँचना ज़रूरी है वरना हज न होगा। नौवीं तारीख़ को सूरज डूबते ही मुज़दलफ़ा को जाएँ। मुहस्सर के मैदान के अलावा मुज़दलफ़ा में जहाँ चाहें ठहर सकते हैं। 'मशअरे हराम' के पास उतरना चाहिए। मुज़दलफ़ा पहुँचकर इशा के वक़्त मग़रिब और इशा की नमाज़ें एक अज़ान और एक इक़ामत के साथ पढ़ी जाएँ। अगर किसी ने मग़रिब की नमाज़ अरफ़ात या रास्ते में पढ़ ली है तो वह सुबह सादिक़ से पहले दुहरा ले। फ़ज्र की नमाज़ अंधेरे में पढ़नी चाहिए और फिर उजाला फैलने तक दुआ, तकबीर, तहलील और दरूद में लगे रहना चाहिए। उजाला होते ही मिना को रवाना हो जाएँ। मुज़दलफ़ा और मिना के बीच मुहस्सर की घाटी मिलती है, उस घाटी से जल्द गुज़र जाना चाहिए। मिना पहुँचकर 'जमरा उक़बा' को पत्थर मारे। सात बार एक-एक कंकड़ मारे और हर बार 'अल्लाहु अकबर' कहे और पहले कंकड़ के साथ तलबियह बन्द कर दे। फिर क़ुरबानी करे। क़ुरबानी 'मुस्तहब' है। अगर 'हज्जे तमत्तो' या 'हज्जे क़िरान' की नीयत की है तो वाजिब है। फिर सिर मुँडाए। इसके बाद इहराम की पाबन्दियाँ ख़त्म हो जाती हैं, लेकिन बीवी से सुहबत अब भी नहीं कर सकते। दस, ग्यारह और बारह तारीख़ों में किसी भी दिन तवाफ़े ज़ियारत करे। अगर रमल और सई पहले कर चुका है तो अब न करे दसवीं तारीख़ की सुबह से तवाफ़े ज़ियारत का वक़्त शुरू हो जाता है। बेहतर यही है कि तवाफ़ उसी दिन कर लिया जाए। यह तवाफ़ फ़र्ज़ है। उसके बाद आख़िरी पाबन्दी भी उठ जाती है। तवाफ़े ज़ियारत के बाद मिना जाएँ और ग्यारह तारीख़ को सूरज ढलने के बाद तीनों जमरात को कंकड़ मारे। पहले उस जमरा को कंकड़ मारे जो 'मस्जिदे ख़ैफ़' के पास है, फिर उसको कंकड़ मारे जो उसके बाद है और आख़िर में 'जमरा-ए-उक़बा' को मारे। हर एक को सात बार में सात कंकड़ी मारे। हर रमी से पहले कुछ देर ठहरे, फिर दूसरे और तीसरे दिन भी ऐसा ही करे, चौथे दिन पौ फटने से पहले न चले तो जमरा पर कंकड़ी मारना वाजिब हो जाएगा,

मगर उस दिन सूरज ढलने से पहले भी मारने की इजाज़त है। सवारी पर से कंकड़ी मारी जा सकती है। अपना सामान मक्का भेज देना और ख़ुद कंकड़ी मारने के लिए रुक जाना 'मकरूह' है। फिर 'तवाफ़े सद्र' करे। यह तवाफ़ मक्का के बाहर के लोगों के लिए वाजिब है इसकी हैसियत बिदाई के सलाम जैसी है। तवाफ़ के बाद काबा की ओर मुँह करके खड़े होकर ज़मज़म का पानी पिए, फिर काबा की चौखट को चूमे, अपना सीना और चेहरा मुलतज़म पर रख दे (काबा का वह हिस्सा जो हजरे असवद और काबा के दरवाज़े के बीच है, मुलतज़म कहा जाता है।) और काबा के पर्दों को थाम कर गिड़गिड़ा कर दुआ माँगे, फिर वापसी के लिए उलटे चलते हुए मस्जिद से निकल जाए।

हज की मीक़ातें

तयशुदा वक़्त और मक़ाम को मीक़ात कहते हैं। पहले मतलब के मुताबिक़ हज के महीने शव्वाल, ज़ीकाअ़दा, ज़िलहिज्जा मीक़ात हैं और दूसरे मायने के मुताबिक़ मीक़ात का मतलब मक्का के चारों ओर के वे मुक़ामात हैं जिनसे आगे इहराम के बग़ैर गुज़रना जायज़ नहीं है।

(1) **ज़ुल हुलैफ़ा**— यह मदीना के लोगों का मीक़ात है। मक्का के उत्तर दिशा में 450 कि० मी० की दूरी पर है।

(2) **हुज़फ़ा**— यह शामवालों का मीक़ात है। मक्का से उत्तर दिशा में 187 कि० मी० की दूरी पर राबेग़ के क़रीब वाक़े था। अब चूँकि उसके निशानात मिट गए हैं इसलिए शाम और मिस्रवालों का मीक़ात अब राबेग़ है जो मक्का से 204 कि० मी० की दूरी पर है।

(3) **क़रनुल मनाज़िल**— यह नज्द के लोगों का मीक़ात है। मक्का से पूरब की तरफ़ 94 कि० मी० की दूरी पर है।

(4) **यलमलम**— यह हिन्दुस्तान, पाकिस्तान का मीक़ात है। मक्का के दक्षिण में 54 कि० मी० पर है।

(5) **ज़ाते इर्क़**— यह इराक़ के लोगों का मीक़ात है। मक्का से उत्तर-पूरब में 94 कि० मी० पर है।

(6) **मनाज़िले मक्का**— मक्कावालों के लिए उनका अपना घर ही मीक़ात है। और जो मक्का और मीक़ात के बीच का रहनेवाला हो उसका भी अपना घर ही मीक़ात है।

(7) **हिल्ल**— मक्कावाले उमरा के लिए हरम की हुदूद से बाहर जाकर इहराम

बाँधेगे।

हज की क़िस्में —

हज और इहराम चार क़िस्म के होते हैं—

(1) **इफ़राद—** इसमें सिर्फ़ हज की नीयत की जाती है। ऊपर की बातें सब इफ़राद के मुताबिक़ दी गई हैं।

(2) **तमत्तो—** हज के दिनों में पहले उमरा का इहराम बाँधना और उमरा करके दोबारा हज का इहराम बाँधना।

(3) **क़िरान—** उमरा और हज दोनों का एक साथ इहराम बाँधना और दोनों को एक ही इहराम से अदा करना।

(4) **उमरा—** यह भी एक छोटा हज है। इसका कोई वक़्त मुक़र्रर नहीं। इसके सिर्फ़ तीन अरकान हैं—

(1) इहराम (2) तवाफ़ (3) सई (सफ़ा-मरवा के बीच दौड़ना ।)

उमरा फ़र्ज़ नहीं, सुन्नत है।

हज का मक़सद

इल्म अमल के बग़ैर मुसीबत है, अमल बग़ैर इल्म के गुमराही है। होश के साथ जोश और जोश के साथ होश भी ज़रूरी है। सोचे-समझे बिना मुहब्बत और मुहब्बत के बिना अक़्ल अधूरी है। मंज़िल तक पहुँचने के लिए न तो सिर्फ़ अक़्ल से काम चलेगा और न सिर्फ़ मुहब्बत से काम बन सकेगा। नस्बुलऐन हासिल करने के लिए मुहब्बत और अक़्ल दोनों की ज़रूरत है। इस्लाम ने अक़्ल की प्यास बुझाने के लिए ज़िन्दगी के चारों तरफ़ निशानियाँ फैला दी हैं और मुहब्बत की आबयारी के लिए हज फ़र्ज़ किया है।

कामयाबी हासिल करने और तरक़्क़ी की बुलंदी पर पहुँचने के लिए जिस तरह इनफ़िरादी तरबियत ज़रूरी है, उसी तरह इजतिमाई और समाजी किरदार में बढ़ोत्तरी और पुख़्तगी भी ज़रूरी है। इनसान की इस ज़रूरत को हज अच्छी तरह पूरा करता है। नस्बुलऐन हासिल करने, मंज़िल पाने, तरक़्क़ी करने और बुलंदी पर पहुँचने के लिए कुछ और चीज़ भी चाहिए यानी इल्मो-अमल, मुहब्बत और अक़्ल, जोश और होश में सन्तुलन, नुक़तए नज़र और अमल की ताक़त, क़लम और तलवार की ताक़त में सन्तुलन। हज इनसान की इन ज़रूरतों को पूरा करता है।

इस्लाम इनसान को कामयाब करने, उसे तरक़्क़ी की बुलंदी तक पहुँचाने और

दुनिया और आख़िरत में भलाई अता करने के लिए उसकी ऊपर बयान की गई तीनों ज़रूरतों को पूरा करता है।

इस्लाम ने कायनात के बारे में ऐसा तसव्वुर दिया है जो सन्तुलन का नमूना है। उसने ज़िन्दगी का एक ऐसा निज़ाम दिया है जो बीच के रास्ते पर चलाता है, मुख़तलिफ़ ताक़तों में तवाज़ुन क़ायम करता है और तरह-तरह के हालात में तवाज़ुन बरक़रार रखने की क़ाबलियत पैदा करता है।

उसने इबादतों का एक ऐसा कोर्स अता किया है जो इनसान की इनफ़िरादी तरबियत करता और इनसानों में बेहतरीन इजतिमाई ख़ूबियाँ और सिफ़तें पैदा करता है। इस्लाम की तालीमात से मुहब्बत और अक़्ल दोनों को ताक़त मिलती है। इस्लाम की छाया में दोनों नन्हें पौधे दिन-दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी करते हैं। हज इस्लाम का एक अहम सतून है। यह इनसान में अल्लाह के लिए मुहब्बत के जज़्बे की न मिटनेवाली ज्योति जगाने में अपनी मिसाल आप है।

पारिभाषिक शब्दावली

अय्यामुत्तशरीक़ — ज़िल-हिज्जा की ग्यारह, बारह और तेरह तारीख़ों को 'अय्यामुत्तशरीक़' कहते हैं। इन तीन दिनों में हाजी हज के दौरान क़ुरबानी के बाद मिना में गुज़ारते हैं।

अरफ़ात — इसका असल नाम 'अर्फ़ा' है, लेकिन 'अरफ़ात' के नाम से मशहूर है। यह मक्का शहर से पूरब की तरफ़ 'ताइफ़' के रास्ते में एक बहुत बड़ा मैदान है। इसकी दूरी मक्का शहर से 13 मील और मिना से 9 मील है। इस मैदान की चौड़ाई 4 मील (लगभग 6.4 किलोमीटर) और लम्बाई 8 मील (लगभग 12.8 किलोमीटर) है। यह उत्तर की जानिब 'जबले अरफ़ात' नामी पहाड़ी से घिरा हुआ है।

यही वह मैदान है जहाँ हर साल हज करनेवाले को आख़िरी अरबी महीना 'ज़िल-हिज्जा' की 9वीं तारीख़ को सूरज ढलने (ज़वाल शुरू होने) से लेकर शाम सूरज डूबने तक ठहरना लाज़िम है। कोई शख़्स जो हज के लिए गया हो, इस मीक़ात (समय-सीमा) में इस मैदान में न पहुँच सका तो उसका हज नहीं होगा। यही वजह है कि इस्लाम के कुछ उलेमा का ख़्याल है कि हज वास्तव में उपर्युक्त अवधि में इस मैदान में हाज़िर होने का नाम है।

इहराम — हज या उमरा करनेवाले मक्का शहर पहुँचने से पहले एक तयशुदा दूरी पर ग़ुस्ल करके एक ख़ास तरह का फ़क़ीराना लिबास पहनते हैं — और तलबिया (एक ख़ास तरह की दुआ) कहते हैं — यही इहराम है। इस लिबास में सिर्फ़ एक तहमद (बिना सिली हुई लुँगी) और एक चादर होती है, जिसको ऊपर से ओढ़ लेते हैं। राजा-रंक, बादशाह-फ़क़ीर सबके लिए एक ही परिधान (ड्रेस कोड) तय है। औरतों के लिए हज में कोई ख़ास तरह का पहनावा निर्धारित नहीं है। उनके लिए इहराम उनके सिले हुए लिबास ही हैं। इस लिबास को पहनने के बाद बहुत-सी चीज़ें हज करनेवालों पर हराम हो जाती हैं, जो आम हालात में नहीं होतीं। जैसे, ख़ुशबू का इस्तेमाल, बाल कटवाना, साज-सज्जा, शादी-ब्याह और मियाँ-बीवी के जिंसी ताल्लुक़ात (यौन-सम्बन्ध) वग़ैरह। इन चीज़ों के हराम होने के कारण ही इस लिबास को 'इहराम' कहा जाता है। 'इहराम' की हालत में यह पाबन्दी भी है कि किसी जानदार का क़त्ल न किया जाए और न किसी जानवर का शिकार किया जाए और न ही किसी शिकारी को शिकार का पता बताया जाए।

उश्र — ग़ल्ले की पैदावार का दसवाँ भाग, जो ग़रीबों और ज़रूरतमंदों की

मदद के लिए बैतुलमाल में जमा कराना ज़रूरी है। यह रेट उस स्थिति में है जब फ़सल बारिश के पानी से पैदा हुई हो। अगर उपज में खाद-पानी के लिए धन ख़र्च किया जाता है, तो ऐसी हालत में 'उश्र' उपज के दसवें भाग के बजाय बीसवाँ भाग होता है। अगर किसी जगह 'बैतुलमाल' क़ायम नहीं है तो अपने विवेक से ज़कात की निर्धारित मदों पर इसे स्वयं ख़र्च करना चाहिए।

एतिकाफ़ — शाब्दिक अर्थ है : अपने आपको किसी चीज़ से बाँध रखना। किन्तु इस्लामी शरीअत में एतिकाफ़ "नीयत के साथ मसजिद में रुके रहने या घर में नमाज़ की जगह सबसे कटकर ठहरे रहने" को एतिकाफ़ कहते हैं। इसका भावार्थ "एकांतवास" भी ले सकते हैं, किन्तु इसमें भी अल्लाह की याद का होना ज़रूरी है।

रमज़ान के आख़िरी दस दिनों में रमज़ान की इक्कीसवीं रात से लेकर ईद का चाँद दिखने तक एतिकाफ़ करना "सुन्नते मुअक्कदा किफ़ाया" है। यानी किसी बस्ती या मुहल्ले में मसजिद हो और मुसलमान रहते हों तथा एतिकाफ़ न किया जाए तो सारे के सारे मुसलमान गुनहगार होंगे, और अगर एक आदमी ने भी एतिकाफ़ कर लिया तो सबकी ओर से वह अदा हो जाएगा।

मसजिद में एतिकाफ़ करना सिर्फ़ मर्दों के लिए ही जायज़ है। औरतों के लिए एतिकाफ़ की जगह उनका घर है, जहाँ वे अपनी नमाज़ अदा करती हैं।

कफ़्फ़ारा — प्रायश्चित। किसी गुनाह के दोष से मुक्त होने के लिए किया जानेवाला उपाय या धार्मिक कार्य। कफ़्फ़ारा का शाब्दिक अर्थ है, छिपानेवाली वस्तु। शुभ कार्य या नेकी गुनाह को ढक लेती है और उसके असर को मिटा देती है। इसी दृष्टि से उन कार्यों को 'कफ़्फ़ारा' कहा गया है जो दोष-मुक्त होने के लिए किए जाते हैं। विभिन्न गुनाहों का अलग-अलग कफ़्फ़ारा क़ुरआन और हदीस में निश्चित किया गया है।

काबा — मक्का में स्थित वह प्रतिष्ठित एवं पवित्र घर जो विशुद्ध एकेश्वरवाद का प्रतीक है, जिसकी दीवारें अल्लाह के आदेश से हज़रत इबराहीम (अलैहि०) और उनके बेटे इसमाईल (अलैहि०) ने खड़ी की थीं। इसी घर की ओर मुँह करके नमाज़ अदी की जाती है।

जिज़या — रक्षा-कर। इस्लामी राज्य में बसनेवाले ग़ैर-मुस्लिमों से उनकी जान, माल और इज़्ज़त-आबरू की रक्षा के बदले में लिया जानेवाला कर। यह कर (Tax) राज्य-प्रबन्ध के उन कामों में ख़र्च होता है जो ग़ैर-मुस्लिमों की रक्षा से संबंधित और उनके लिए अपेक्षित होते हैं। यह कर केवल सम्पन्न ग़ैर-मुस्लिमों से ही लिया

जाता है, ग़रीब और मुहताज ग़ैर-मुस्लिमों पर यह कर न लागू होता है और न ही उनसे लिया जाता है, बल्कि हुकूमत उनकी आवश्यकताओं को अपने राज्यकोष से पूरा करती है।

तरावीह — रमज़ान के महीने में नबी (सल्ल०) ने इशा की नमाज़ (की फ़र्ज़ और सुन्नत) के बाद (और वितर से पहले) तरावीह की नमाज़ पढ़ने का हुक्म दिया है। तरावीह की नमाज़ दो-दो रकअतें करके पढ़ते हैं। तरावीह की नमाज़ों में जमाअत के साथ थोड़ा-थोड़ा करके पूरा क़ुरआन पढ़ने और सुनने का बड़ा सवाब है। तरावीह की नमाज़ अकेले भी पढ़ी जा सकती है लेकिन जमाअत से पढ़ने पर ज़्यादा सवाब है। तरावीह में आम तौर पर 20 रकअतें रोज़ पढ़ी जाती हैं। आठ रकअत पढ़ना भी नबी (सल्ल०) से साबित है और अहले हदीस आठ रकअत तरावीह पढ़ते हैं।

तलबिया — इहराम बाँधने के बाद बुलंद आवाज़ से 'तलबिया' पढ़ना 'मुस्तहब' (पसंदीदा अमल) है। तलबिया हाजियों के लिए एक विशेष दुआ और एक तरह का स्लोगन है जिसे बार-बार पढ़ते रहने की हिदायत है। 'तलबिया' के शब्द ये हैं : "लब्बैक अल्लाहुम्म लब्बैक। लब्बैक ला शरीक लक लब्बैक। इन्नल हम्द वन्निअ-मत लक वल मुल्क लाशरीक लक।" भावार्थ : मैं हाज़िर हूँ ऐ अल्लाह, मैं हाज़िर हूँ। तेरा कोई साझी नहीं। मैं हाज़िर हूँ। बेशक तमाम तारीफ़ें और नेमतें तेरे ही लिए हैं औ तेरी बादशाही में कोई शरीक नहीं।"

तवाफ़ — परिक्रमा, चक्कर लगाना। हज या उमरा करनेवाले अल्लाह के घर काबा के चारों ओर सात चक्कर लगाते हैं। इसे 'तवाफ़' कहते हैं।

तहमीद — 'अलहम्दु लिल्लाह' (तारीफ़ अल्लाह तआला ही के लिए है) कहने को 'तहमीद' कहते हैं। हर अच्छी बात पर यह कलमा दोहराया जाता है।

तहलील — 'ला-इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई इलाह/उपास्य/पूज्य नहीं) कहना 'तहलील' कहलाता है।

ताग़ूत — यह शब्द 'तुग़ियान' से निकला है। तुग़ियान का अर्थ है : सीमा से आगे बढ़ना, निरंकुश हो जाना, उद्दण्ड होना। अतः हर उस चीज़ को ताग़ूत कहेंगे जिसमें अल्लाह के मुक़ाबले में उद्दण्डता पाई जाती हो और जो उद्दण्डता पर लोगों को उभारती हो, चाहे वह आदमी की अपनी इच्छा हो या समाज का कोई भी व्यक्ति हो, या कोई हुकूमत या संस्था हो, या स्वयं शैतान या इबलीस हो।

फ़िदया — मुक्ति, प्रतिदान, अर्थदण्ड। वह धन जिसके बदले में किसी अपराधी

को छुड़ाया जाए या प्राणदण्ड से मुक्त कराया जाए। वह माल जो व्यक्ति अपनी किसी ग़लती और कोताही के बदले में मुहताजों पर ख़र्च करे।

बरज़ख़ — वह आलम स्थिति जिसमें सारे इनसान अपनी मौत के दिन से लेकर क़ियामत तक रहेंगे।

बैतुल्लाह — अल्लाह का घर अर्थात् काबा। यह पहली इबादतगाह है जो इनसानों के लिए बनाई गई। यह तमाम दुनिया के इनसानों के लिए हिदायत का मर्कज़ है।

मसजिदे-हराम — प्रतिष्ठित मसजिद। वह मसजिद जिसके बीच काबा स्थित है।

मीक़ात — हज के दौरान तयशुदा वक़्त और मक़ाम को 'मीक़ात' कहते हैं। पहले मतलब के मुताबिक़ हज के महीने शव्वाल, ज़ी-क़ादा, ज़िल-हिज्जा मीक़ात हैं और दूसरे माने के मुताबिक़ मीक़ात का मतलब मक्का के चारों ओर के वे मक़ामात (स्थल) हैं, जिनसे आगे 'इहराम' बाँधकर गुज़रते हैं।

मुनाफ़िक़ — कपटाचारी, कपटी, छली। ऐसा इनसान जो अपने को मुसलमान तो कहता हो लेकिन इस्लाम से उसका सच्चा सम्बन्ध न हो। मुनाफ़िक़ कई तरह के हो सकते हैं — (1) वे लोग जो इसलिए मुसलमानों में घुस आए हों और अपने को मुसलमान कहते हों, ताकि वे इस्लाम को ज़्यादा से ज़्यादा नुक़सान पहुँचाने में कामयाब हो सकें। (2) वे जिनका मक़सद इस्लाम या मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाना तो न हो अलबत्ता मुसलमान सिर्फ़ इसलिए हुए हों कि वे इहलौकिक और भौतिक लाभ मुसलमानों से उठाएँ और उनका इस्लाम से कोई वास्ता न हो, न उसकी चाह उनके दिल में हो। (3) वे लोग जो शामिल तो हों मुसलमानों ही के गिरोह में लेकिन ईमान उनका बहुत ही कमज़ोर हो। जब कभी भी आज़माइश पेश आए तो वे कमज़ोरी दिखा जाएँ।

मुशरिक — बहुदेववादी, शिर्क करनेवाला, किसी अन्य को ईश्वर के समकक्ष घोषित करनेवाला।

मुशरिक वह व्यक्ति है जो ईश्वर के अस्तित्व या उसके गुणों या उसके हक़ में दूसरों को साझीदार बनाए। अस्तित्व में साझीदार ठहराने का यह अर्थ है कि 'किसी से उसको या उससे किसी को' उत्पन्न होने की धारणा रखी जाए जैसे किसी को उसका बाप या उसकी सन्तान समझा जाए।

यौमुत्तरविया — ज़िल-हिज्जा की आठवीं तारीख़ को 'यौमुत्तरविया' कहते हैं।

यौमुल-अरफ़ा — ज़िल-हिज्जा की नौवीं तारीख़ को यौमुल-अरफ़ा कहते हैं।

यौमुन्नह्र — ज़िल-हिज्जा की दसवीं तारीख़ को 'यौमुन्नह्र' कहते हैं। हाजी लोग यौमुन्नह्र को क़ुरबानी से फ़ारिग़ होकर इहराम खोल देते हैं, मर्द सिर मुँडाते हैं और औरतें चोटी के कुछ बाल काटती हैं, नहाते-धोते हैं और वे पाबन्दियाँ ख़त्म हो जाती हैं, जो एहराम की हालत में उनपर लागू थीं।

अलैहि० — इसकी मुकम्मल शक्ल 'अलैहिस्सलाम' यानी 'उनपर सलामती हो' है। नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ एहतिराम के लिए ये शब्द बढ़ा देते हैं।

रज़ि० — इसकी मुकम्मल शक्ल है, 'रज़ियल्लाहु अन्हु'। इसके माने हैं, 'अल्लाह उनसे राज़ी हो।' सहाबी के नाम के साथ एहतिराम की यह दुआ बढ़ा देते हैं।

सहाबी — ईमानवाले उस ख़ुशक़िस्मत इनसान को सहाबी कहते हैं, जिसे नबी (सल्ल०) से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। सहाबी का बहुवचन सहाबा है और स्त्रीलिंग सहाबिया है।

'रज़ि०' अगर किसी सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो 'रज़ियल्लाहु अन्हा' पढ़ते हैं और अगर सहाबा के लिए इस्तेमाल हो, तो 'रज़ियल्लाहु अन्हुम' कहते हैं।

सल्ल० — इसकी मुकम्मल शक्ल है : 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम', जिसका अर्थ है, 'उनपर अल्लाह की रहमत और सलामती हो!' हज़रत मुहम्मद का जब नाम लिखते, लेते या सुनते हैं, तो आदर और प्रेम दर्शाने के लिए ये शब्द बढ़ा देते हैं।

वह्य— प्रकाशना, ईश्वरीय संकेत। इससे मक़सद वह ख़ास वह्य है जिसके ज़रिए अल्लाह अपने नबियों को अपनी इच्छा और हुक्मों से वाक़िफ़ कराता है। क़ुरआन व दूसरी ख़ुदाई किताबों का नुज़ूल वह्य के ज़रिये ही हुआ है।

सूरा — क़ुरआन में छोटे-बड़े 114 अध्याय हैं, जिनमें से प्रत्येक अध्याय को 'सूरा' कहते हैं। 'सूरा' को 'सूरह' और 'सूरत' भी कहा जाता है। प्रत्येक सूरा अपनी जगह पूर्ण होती है। किन्तु इसी के साथ उसका अपनी अगली-पिछली सूरतों से गहरा संपर्क भी होता है।

सूरा शब्द 'सूर' से निकला है जिसका शाब्दिक अर्थ है— शहरपनाह, प्राचीर। इसका बहुवचन 'सुवर' है, किन्तु 'सूरतों' या 'सूरतें' भी प्रयुक्त होती हैं।